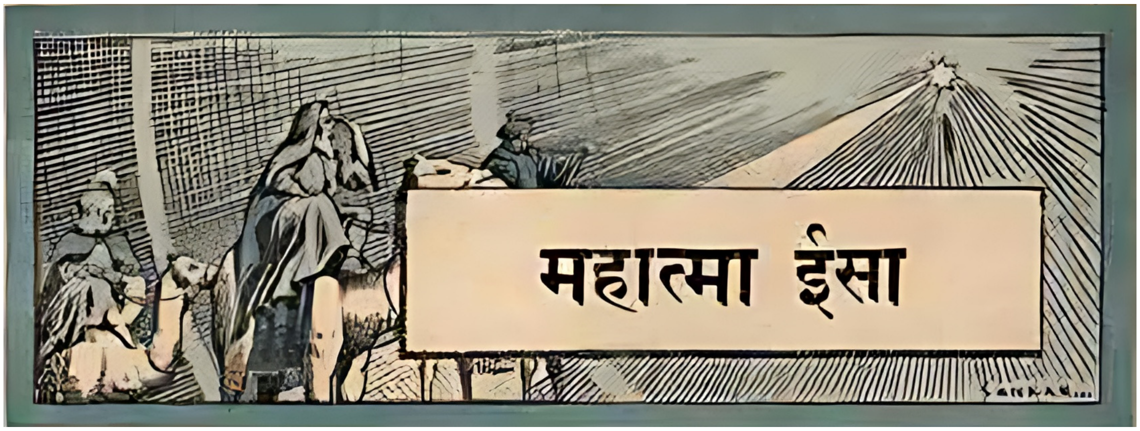
चन्दामामा

माँ-बच्चों का मासिक पत्र





महात्मा ईसा

पुराने जमाने में 'बेतुलहम' नामक एक गाँव के पास कुछ गड़रिए के लड़के भेड़े चरा रहे थे। एक दिन रात में उनको आसमान के एक कोने में एक बड़ा तारा दिखाई पड़ा। उसे देख कर वे लोग आश्चर्य और भय में पड़े हुए थे कि वहाँ एक देवदूत आकाश से उतरा और उनके सामने आकर खड़ा हो गया :-

"बच्चों ! डरो मत! हम सबों के देवाधिदेव ईसू क्रिस्ट अभी अवतरित हुए हैं। इसीलिए वह बड़ा सितारा इस तरह चमक उठा है।" यह कह कर वह देव-दूत अदृश्य हो गया।

वह सितारा और भी बहुत से लोगों का दीख पड़ा था। उसे देखने वालों में तीन बड़े बड़े ज्ञानी भी थे। दुनियाँ का उद्धार करने बाले ही यह महात्मा ईसू क्रिस्ट पैदा हुए हैं; यह बात उन्होंने जाकर अपने राजा 'हीरोद' को कह सुनाई। "ईसू क्रिस्ट कहाँ पैदा हुए हैं? जाकर आप लोग पता लगाइए, तब मैं जाकर दर्शन करूँगा।" हीरोद ने उनसे कहा। फौरन वे तीनों ज्ञानी महात्मा ईसा की खोज में निकल पड़े। राजा हीरोद ने ज्ञानियों से ऐसा कह तो दिया, लेकिन सच पूछो तो उसके दिल में महात्मा ईसा के प्रति कोई भक्ति-भाव नहीं था। वह बड़ा ही क्रूर आदमी था। महात्मा ईसा को देखने जाने में उसका उद्देश्य था, कि उस दिव्य शिशु का काम तमाम कर दे।

ग्वाल-बाल को साथ लेकर वे तीनों ज्ञानी इस ओर चल पड़े जिधर वह बड़ा तारा चमका था। तीनों कुछ रोज यों चलते रहे। आखिर वे एक सराय में पहुँचे। उसी समय में कुछ पहले ईसा की माँ 'मेरी' और पिता जोसफ वहाँ आकर ठहरे हुए थे। लेकिन



सराय में भीड़ ज्यादा होने के कारण ईसू के माँ-बाप को वहाँ पर कोई जगह न मिल सकी। वे लोग वहीं एक अस्तबल में ठहर गए। महात्मा ईसा यहाँ पैदा हुए।

तीनों ज्ञानियों ने शिशु-रूप में महात्मा ईसा को देखा और देखते ही तन्मय हो गए। फिर उन्होंने उस दिव्य शिशु को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। लेकिन उन ज्ञानियों ने हीरोत से जाकर महात्मा ईसा के दर्शन करके आने की बात नहीं कहीं, क्योंकि उन्हें मालूम था, कि अगर ये लोग कह देंगे, तो वह उस बच्चे को मार डालेगा।

वहाँ हीरोद इन ज्ञानियों की राह देखता रहा और जब उन में से कोई नहीं लौटा, तो उसने सोचा-"अरे ! यह तो मुझे धोखा दिया गया।" वह उत्तेजित हो उठा। उसने तुरन्त अपने सैनिकों को बुला कर कहा-"तुम लोग कई भागों में बँट जाओ और समस्त राज्य में घूम कर देखो - जहाँ छोटे बच्चे मिलें, सबों को मार डालो।" इस सामोहिक शिशु-ह्त्या कराने में हीरोद का मतलब यह था कि जब सब मार डाले जाएँगे, तो उनमें ईसा भी खतम हो जाएगा।

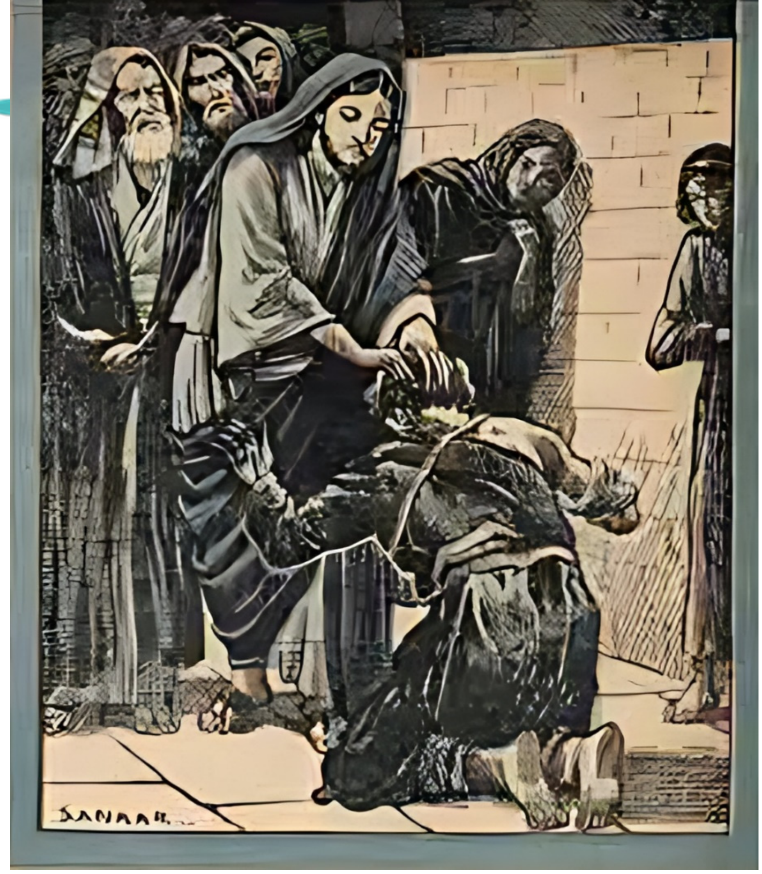
इधर राजा हीरोद इस तरह आतुर हो रहा था। उधर ईसा के जन्म स्थान में एक विचित्र घटना घटी। जोसफ ने स्वप्न में देखा कि एक देवता आकर उससे कह रहे हैं तुम्हारे घर में जो यह बच्चा पैदा हुआ है, वह लोक का उद्धार करने आया है। लेकिन इसकी जान खतरे में है। इसलिए तुरन्त इसको हटा ले जाओ किसी दूसरी जगह।" इतना कह कर वे देवता अदृश्य हो गए। यों जोसफ़ अपने बच्चे और उसकी माँ को लेकर मिश्र देश में चला गया। हीरोद की मृत्यु तक वे लोग वहीं छिप कर गुजर-बसर करते रहे।

अब कोई डर नहीं। बच्चे का ग्रह दूर हो गया। यह साहस आते ही जोसफ अपने परिवार को लेकर 'नजर' नामक एक जगह में चला आया। ईसू क्रिस्ट वहीं सयाने हुए। लड़कों के साथ वे पाठशाला जाते और अपने पिता की बढ़इगीरी के काम में मदद भी करने लगे।

देखने में ईसू क्रिस्ट दूसरे बच्चों के समान ही लगते थे, लेकिन बुद्धि में बृहस्पति थे। कैसा भी पण्डित उनके सामने आकर कठिन से कठिन प्रश्न करे, तो बड़ी आसानी से वे सब को रुचने वाला सुन्दर जवाब दे देते थे।

एक दिन ईसू क्रिस्ट को लेकर माँ बाप कहीं यात्रा करने चले गए। लेकिन घर लौटते समय लड़का न जाने कहाँ गायब हो गया। तीन दिन तक माँ-बाप व्याकुल होकर रात दिन उसे खोजते रहे।

ईसू क्रिस्ट का देश भ्रमण शुरू हो गया। जहाँ-जहाँ वे गए लोगों में प्रेम-मन्त्र का उपदेश उन्होने दिया। उनके प्रेमोपदेश को सुन कर लोग मुग्ध हो जाते और उनके अनुयायी बन जाते थे। उस महात्मा ने अपने



देश भ्रमण में जाने कितने अन्धों को दृष्टि प्रदान की, जाने कितने कोढ़ियों को चङ्गा किया और जाने कितने लोकोपकारक चमत्कार कर दिखाए। महात्मा ईसा का उपदेश मछुआरों के लिए, व्यापारियों के लिए और मामूली काम करके जीने वालों के लिए एक समान लाभदायक सिद्ध हुआ। महात्मा ईसा जहाँ जाते थे, भीड़ की भीड़ जमा हो जाती थी और देह की सुधि बिसार कर उनके उपदेश सुनते रहते थे। इस प्रकार इनका बढ़ता हुआ प्रभाव देख कर कुछ लोगों के मन में उनके प्रति ईर्ष्या पैदा हो गई।

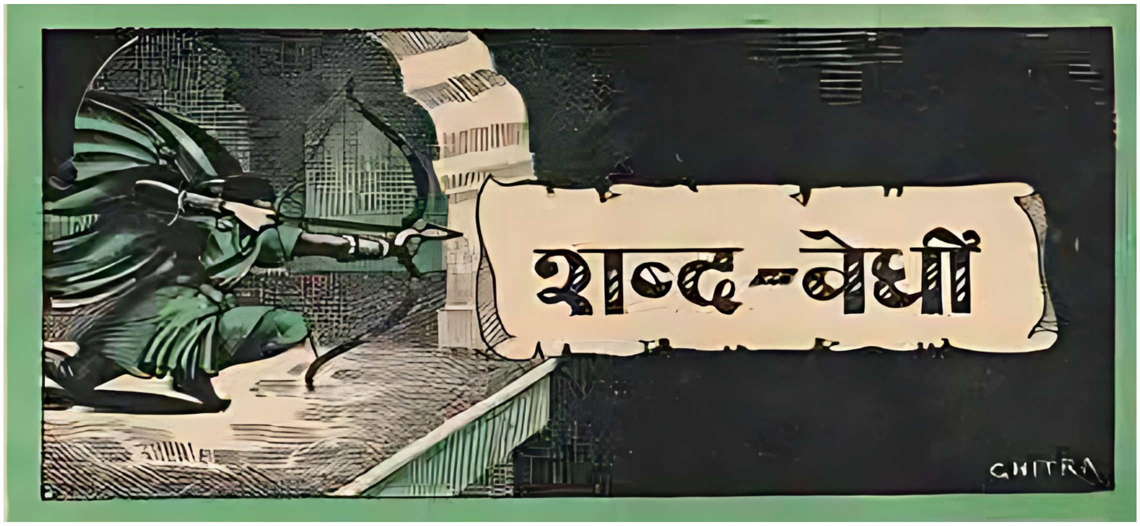
चाहे जैसा भी समय हो, दुनियाँ में कभी दुष्टों की कमी नहीं रही। महात्मा ईसा जो उपदेश देते थे, वह कुछ दुष्टों की पसन्द नहीं पड़ा। उन लोगों ने जाकर राजा के कान भरे और राज-परिवार महात्मा ईसा के धर्म-प्रचार के विरुद्ध खड़ा हो गया। उन लोगों ने महात्मा ईसा को क्रूस पर चढ़ा कर मार डालने की भी तैयारी कर ली। देखते-देखते उन लोगों ने उन्हें क्रूस पर खड़ा करके उनके दोनों हाथ फैला दिए और कीले ठोक दी। लेकिन महात्मा ईसा को उनके ऊपर जरा भी गुस्सा नहीं आया। अन्त तक वे उन्हें प्रेम का सन्देश ही सुनाते रहे। सूली पर चढ़ने के तीसरे दिन महात्मा ईसा ने अपने शिष्यों के सामने प्रत्यक्ष हो, उन्हें अपना सन्देश दिया-"अपने जानी दुश्मनों से भी हमें बदला लेने की भावना नहीं रखनी चाहिए।"

इस प्रकार महात्मा ईसा को सूली चढ़ाने का एक और भी कारण था। ऐसा कहा जाता है कि भगवान ने महात्मा ईसा को सब प्रकार की महिमाएँ प्रदान की थीं, लेकिन सिर्फ प्राण देने का अधिकार नहीं दिया था। लेकिन महात्मा ईसा ने भगवान की बात भूल कर एक प्राणी की प्राण दे दिया था। इसलिए उन्हें यह सजा भोगनी पडी।

महात्मा ईसा ने जो धमोपदेश किया था, वही आज ईसाई धर्म के नाम से प्रसिद्ध है। महात्मा ईसा केवल धर्म प्रचारक ही नहीं थे, वे एक युग-निर्माता भी थे। उनके नाम से जो संवत चला, वही ईसवी सन आज सारी दुनियाँ में प्रचलित है।

सूली पर चढ़े हुए महात्मा ईसा का रूप ही ईसाई धर्म का प्रतीक बन गया और प्रत्येक ईसाई उस चिन्ह को धार्मिक भावना से अपने पास रखना अपना कर्तव्य समझता है।





आधे घण्टे में बरात उस जङ्गल के मन्दिर में पहुँची। शादी के समय भीमसिंह का प्राण-प्रिय मित्र सोमशर्मा पुरोहिताई करेगा-यह बात विजयसिंह को तब तक मालूम नहीं थी। उसने सोचा-"शब्द-वेधी की भी आँखों में धूल झोंक कर करुणा के साथ मजे में विवाह कर लूँगा।"

मन्दिर से सोमशर्मा बाहर निकला और वरवधू के पास आया। अपार दुख में पड़ी हुई, सिर झुकाए खड़ी करुणा को, और उस के पास ही खड़े हुए बूढ़े कबन्धवर्मा को उसने आशीर्वाद दिया। विजयसिंह को मालूम हुआ कि अब यह जबरदस्ती की शादी शायद नहीं रुक सकेगी।

सोमशर्मा आगे-आगे चला और वरवधू उसके पीछे-पीछे जाने लगे। सहसा जङ्गल गुँजाते हुए मङ्गल-बाद्य बजने लग गए। उसी समय मन्दिर को चारों ओर से घेरे, घने पेड़ो में से एकाएक दो बाण सनसनाते हुए आए; एक सोमशर्मा की बाँह में और दूसरा कबन्धवर्मा की छाती में घुस गया।



वहाँ जमा हुए लोगों में हाहाकार मच गया-"शब्द-बंधी ! शब्द बेधी ! पेड़ों में खोजो !" कहता हुआ भीमसिंह चिल्ला उठा। कबन्धवर्मा की छाती में बाण धुस गया था। घाव ऐसा गहरा था कि पीड़ा से छटपटा कर उसने प्राण छोड़ दिए। सोमशर्मा की भुजा में जो तीर घुस गया था-उसने खींच कर उसे बाहर फेंका और गरजकर कहने लगा-"यह दुष्टता शब्दवेधी की नहीं हो सकती, यह तो विजय का काम है। जरूर वह यहीं-कहीं पेड़ों में छिपा होगा-खोज निकाले उसे।"

भीमसिंह के कुछ सिपाहियों ने उन लोगों को घेर लिया जो शादी देखने आए थे, और कुछ सिपाहियों ने मन्दिर के चारों ओर के पेड़-पौधों और आस पास के जङ्गल प्रदेश की छानबीन शुरू कर दी।

विजयसिंह को एक ओर खुशी हो रही थी, और दूसरी ओर बड़ा डर भी हो रहा था। किसी तरह बूढ़ा कबन्धवर्मा मारा गया, जबरदस्ती की वह शादी रुक गई। लेकिन यह भीमसिंह के निपाही जो चारों ओर से घेरे लोगों की जाँच-पड़ताल कर रहे हैं, इनसे किस प्रकार जान बचाई जाय ? यह एक गहरी समस्या उसके सामने आ खड़ी हुई।

"नाथूसिंह ! अब क्या उपाय है ?" उसने बड़ी आतुरता से पूछा।

यह सुन कर नाथूसिंह कहने लगा-"उपाय पूछ रहे हो ? अब दूसरा उपाय क्या रह गया है ? 'जय सीताराम' कहो। हमारे लिए एकमात्र वही उपाय रह गया है। जब तक साँस तब तक आस। 'जय सीताराम कहते चलो। मरने पर भी मुक्ति मिल जाएगी।" यह कह कर नाथूसिंह ने एक लम्बी साँस छोड़ी।

विजयसिंह ने भी कहा-" 'जय सीताराम !' उसके सिवा और करना ही क्या है ?"

"जय सीताराम। हर हर महादेव...।" नाथूसिंह जब तक यह कह ही रहा था, कि दस सिपाहियों को साथ लिए सोमशर्मा उसके सामने आकर खड़ा हो गया।

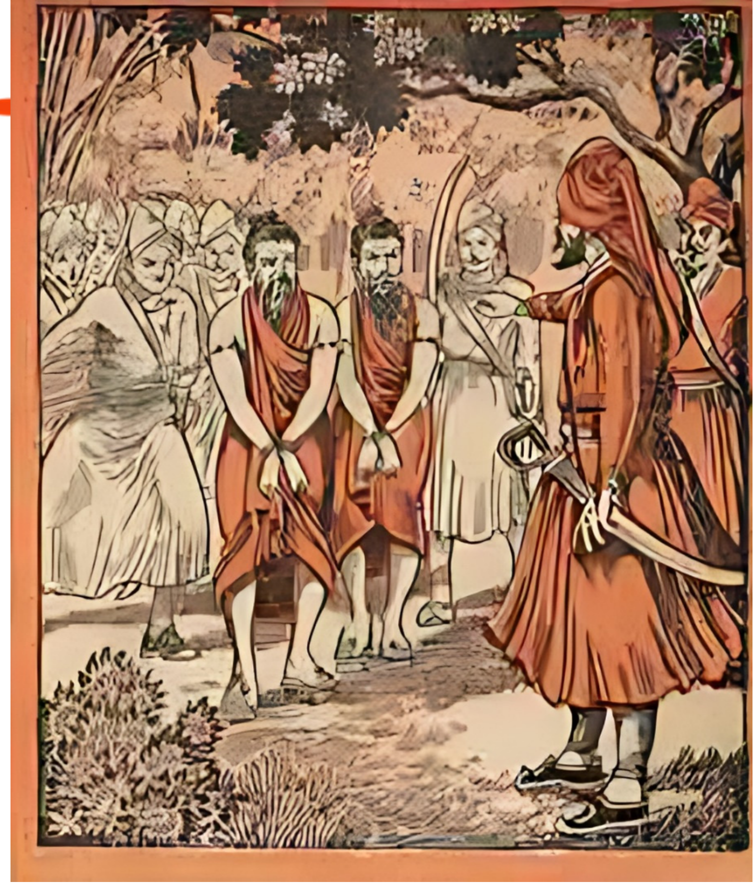
"कौन यह 'जय सीताराम ' कह रहा है?" कह कर वह आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगा। .

"हम...हम.. हिमालय पहाड़ पर साठ साल तक तपस्या करने....."

"साठ साल तक तपस्या ? अरे, अभी तो तुम कुल तीस के भी नहीं हुए होगे।" यह कह कर सोमशर्मा ने अपने सिपाहियों को हुक्म दिया "बाँध लो इन्हें।"

"साठ साल तक ही नहीं; बीस .....दस....." नाथूसिंह इस तरह बड़बड़ाने लगा।

"बाँध लो इन्हें। सन्यासी नहीं; धोखेवज हैं ये लोग।" सोमशर्मा गरज उठा। सिपाहियों ने फौरन विजयसिंह और नाथूसिंह के हाथों में हथकड़ियों डाल दीं।



हथकड़ियाँ पड़ते ही विजयसिंह सोचने लगा-"अब सब कुछ चौपट हो गया। अभी नहीं तो कुछ देर बाद सोमशर्मा और भीमसिंह को मालुम ही हो जाएगा कि हम लोग कौन हैं। इस के बाद जो कुछ होगा; वह साफ-साफ मालूम हो रहा है। मेरे साथ नथूसिंह की भी बलि दे दी जाएगी.।" इनने में भीमसिंह फिर कुछ सरदारों को लेकर वहाँ आ गया। उसका मुँह बता रहा था कि तलवार भोंकने से भी उस में से एक बून्द खून नहीं निकलेगा। उसने सोचा था कि सब कुछ मजे में हो जाएगा, इस तरह कोई बाधा आकर नहीं खड़ा होगी। सोमशर्मा, विजयसिंह और नाथूसिंह की ओर देख कर भीमसिंह से कहने लगा-



"ये लोग कपटी सन्यासी हैं। शायद ये लोग चण्डीदास के जासूस हैं।"

भीमसिंह विजयसिंह के पास आया और सिर से पैर तक जलती आँखों से देखते हुए उसकी जाँच-पड़ताल करने लगा। फिर कुछ सोचने के बाद उसने विजयसिंह की दाढ़ी को पकड़ कर खींचा। खींचते ही विजयसिंह की दाढ़ी उसके हाथ में आ गई।

"आहा !" कह कर गूढ़ भाव से भीमसिंह हँस पड़ा। उसके बाद सोमशर्मा की ओर मुड़ कर उसने कहा-"ये लोग चण्डीदास के दल वाले हैं–यही तुम्हारा अभिप्राय है न?"

"हाँ! मालूम तो ऐसा ही होता है। वह नकली दाढ़ी, वह चोर दृष्टि....!"

"विजयसिंह ही क्यों नहीं हो सकता?" कह कर भीमसिंह बड़े जोर से हँसा-"हाँ; विजय।" कहते हुए विजयसिंह ने अपनी छाती ठोंकी।

सोमशर्मा उसकी बात से काँप उठा। वहाँ जो सरदार खड़े थे आश्चर्य से आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगे। लेकिन विजयसिंह जरा भी विचलित न होकर कहने लगा-"हाँ मैं विजयसिंह ही हूँ, तुम्हारा और सोमशर्मा का जानी दुश्मन।"

"पिञ्जड़े में पड़ने के पहले तुम जानी-दुश्मन थे। लेकिन अब ....? अच्छा यह योगीराज कौन हैं ?" भीमसिंह ने व्यङ्ग से कहा।

"वह मेरा दाहना हाथ है ! नाम है नाथूसिंह।"

"आहा नाथूसिंह जी !" कह कर भीमसिंह खूब जोर से हँसा। जो लोग वहाँ जमा थे, वे भी हँसने लगे। भीमसिंह ने दाहने हाथ से सबों को चुप रहने का सङ्केत करके, बाएँ हाथ से नाथूसिंह की दाढ़ी पकड़ी और व्यङ्ग बरसा कर बोला-

"बाबू नाथूसिंह जी ने सोचा होगा कि घाटों की ठेकेदारी से इस व्यापार में ज्यादा काम होगा।"

इस बात से वहाँ के सब लोग फिर ठठा कर हँस पड़े। नाथूसिंह के मन से उस समय प्राणों का डर जाने कहाँ भाग गया, दाँत पीस कर गुस्से से वह यों कहने लगा-"हम लोग पिञ्जड़े में फँस सकते हैं, लेकिन तुम लोगों को पिञ्जड़े में बन्द करने को तैयार जो चण्डीदास है उसकी बात याद रखो। अभयसिंह की हत्या करने वालों को और उनके पुत्र विजयसिंह को मारने वालों को चण्डीदास छोड़ेगा नहीं, इसका विश्वास रखो।" नाथूसिंह की रोष भरी बातों ने भीमसिंह को ही नहीं, उसके साथियों को भी निःशब्द बना दिया। सोमशर्मा निश्चेष्ट हो गया; उसके मुँह से कोई बात न निकली, हवा में डोलते हुए पीपल के पत्ते की तरह वह थर-थर काँपने लगा।

भीमसिंह कुछ देर सिर झुकाए खड़ा रह गया। एक न एक निश्चय पर तुरन्त पहुँचना ही चाहिए। यह सोच कर उसने निश्चय कर लिया कि विजयसिंह को अब वह जीता नहीं जाने देगा।



"जहाँ चार राजा जमा होते हैं, वहाँ न्याय होता है, यह न्याय शास्त्र कहता है। सब लोग यह मञ्जूर करते हैं न।" भीमसिंह ने कहा।

"मञ्जूर है ! मञ्जूर है।" कहते हुए सब सरदार एक स्वर से बोल उठे। उसके बाद सोमशर्मा यों कहने लगा-"इन दोनों को शत्रु सैनिक में नहीं गिना जाना चाहिए। यह लोग तो हत्यारे हैं... साधारण वधिक हैं.... धर्म शास्त्र भी...."

"सोमशर्मा ! ठहरो।" कहते हुए भीमसिंह उसे रोक कर बोला- "यह लोग हत्यारों से



भी बढ़ कर नीच है। अध्यात्मिक शक्ति बाले योगियों को भी इन लोगों ने अपने नकली वेश से अपमानित किया; मन्दिर के पवित्र प्राण- गण को इन लोगों ने लहू से से सींच दिया है। विवाह की पोशाक में कबन्धवर्मा की ....."

"इनको फाँसी पर चढ़ा देने के लिए इनमें से एक भी अपराध काफी है।" सोमशर्मा ने गुस्से से कहा। भीमसिंह ने चारों ओर देख कर कहा-"अच्छा! तो इन्हें मौत की सजा दी गई। गले में फाँसी डाल कर पेड़ से लटका दिया जाय, और जब तक जान न निकल जाए, ये लोग पेड़ से लटकाए रखे जाएँ ! क्या सब को मञ्जूर है न?"

"मञ्जूर है। हम सब को मञ्जूर है।" सभी सरदारों ने एक स्वर में कहा। लेकिन उसी समय काँसे की सी आवाज़ में यह शब्द सुनाई पड़े-"मैं देवलपुर का जमींदार हूँ। तुम सब मेरे मेहमान हो, लेकिन मेरी आज्ञा के बिना तुम लोग यहाँ किसी प्रकार का न्याय निर्णय नहीं कर सकते।

भीमसिंह और सोमशर्मा के साथ-साथ सब लोगों ने मुड़ कर इस ध्वनि की ओर देखा। दस सैनिकों के साथ देवलपुर के जमींदार आते हुए दिखाई पड़े। उनके सम्मान के लिए सब लोग उठ खड़े हुए और स्वागत-सत्कार करने लगे।

देवलपुर के जमींदार को आया हुआ देख कर विजयसिंह और नाथूसिंह को फिर से धीरज बँध गया। "सच पूछा जाए तो कबन्धवर्मा की हत्या में इन लोगों का कोई हाथ नहीं है, और हत्यारे का निर्णय करना किसी भी न्यायाधीश के वश की बात नहीं। ज्यादा से ज्यादा इन पर इतना ही इल्जाम लगाया जा सकता है कि उन हत्यारों के

साथ इनका कुछ सम्बन्ध हो सकता है।" देवलपुर के जमींदार को देखते ही भीमसिंह के तन-बदन में आग सी लग गई, दाल- भात में मूसलचन्द्र की तरह ये लोग कहाँ से आ धमके यहाँ ? लेकिन तलवार से वह कुछ नहीं कर सकता था, सब कुछ कौसल से साधना होगा, इसलिए उसने कहा-"ये दोनों हत्यारे हैं, इन लोगों ने शादी की पोशाक पहने फबन्धवर्मा की हत्या की।"

"इनके पास छुरी-कटारी तो कुछ नहीं दीख पड़ती।" कह कर देवलपुर के जमीदार ने अपना सन्देह प्रगट कर दिया।

"इन लोगों ने तीर से हत्या की, मैं जरा से बच गया हूँ। यह नकली वेश ही इन्हें हत्यारा साबित करता है।" सोमशर्मा ने कहा।

"इस देवलपुर राज्य में नकली वेश धारण करने के कारण कोई अपराधी नहीं समझा जाता। तीर मार कर इन लोगों ने कबन्धयर्मा की हत्या की, इसका कोई सबूत नहीं। अच्छा.! हम सब इसका इन्साफ़ कर लेंगे।" देवलपुर के जमींदार ने कहा।



विजयसिंह और नथूसिंह को देवलपुर के जमींदार के सैनिकों ने अपने वश में कर लिया। अब क्या किया जाए? भीमसिंह लाचारी से देखता रह गया। वे लेग सरदारों के सामने खड़े कैदी को ले जाने लगे। अब भीमसिंह चुप न रह सका, उसने कहा-"देवलपुर के शासनाधिकार को हम मानते हैं। यह सच है कि हम लोग यहाँ अतिथि होकर आए हैं। लेकिन कोसलपुर के अधिपति के विरुद्ध काम करने वाले इन लोगों को आप यों हीं नहीं छोड़ देंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।"

यह बात सुनते ही देवलपुर का जमींदार हठात रुक गया। फिर कुछ सोच कर वह

भीमसिंह के पास गया और सलाह-मशवरा करने लगा। उसके बाद उस से विदा लेते हुए उसने कहा-"हम सब कोसलपुर के अधिपति के अनुचर ही हैं और जो बीसलपुर के द्रोहियों के साथ हाथ मिलाएगा, वह हमारे हाथ से बचकर नहीं जा सकता। तुम लोगों के सामने यह बचन में देता हूँ।" सोमशर्मा और भीमसिंह वह बात सुन कर परवश हो गए। नाथूसिंह की ऊपर की साँस ऊपर ही रह गई। विजयसिंह को ऐसा मालूम हुआ कि जैसे खाई से निकल कर खन्दक में पड़ने जा रहा हो। लेकिन विधि-विधान के सामने सिर झुका कर कसनसाते हुए कलेजे से चुप रह गया।

देवलपुर के जमींदार ने कैदियों को आगे-आगे ले जाने का हुक्म दिया। जङ्गल पार करके सब लोग नगर में पहुँच रहे थे कि विजयसिंह को सहसा करुणा की याद आ गई। कबन्धवर्मा की छाती में बाण लगते ही जो गोलमाल हुआ, उसमें करुणा की हालत क्या हुई उसे कुछ मालूम न हो सका।

"करुणा की गति क्या हुई होगी ?" विजयसिंह ने नाथूसिंह से पूछा।

"कौन जाने क्या हुई होगी ? पहले अपनी बात तो सोचो।" नाथूसिंह ने कहा।

"चलो, भाई चलो।" कहते हुए देवलपुर जमींदार के सैनिकों ने उनसे गरज कर कहा। विजयसिंह और नाथूसिंह सोचने लगे कि ठीक मौत के मुँह में कदम बढ़ा रहे हैं। कुछ देर में वे देवलपुर जमींदार के महल में पहुँच गए।

[अभी और है]





एक समय किसी गाँव में लाडमल और हजारीमल दो दोस्त रहते थे। दोनों बड़े ब्यापारी थे और दोनों ने खूब पैसा जमा कर रखा था। लेकिन हजारीमल कुछ खर्चीला था। लाडमल को "दिन पति लाभ-लोभ अधिकाई !" के अनुसार लोभ और लालसा की अधिकता थी। हजारीमल हमेशा घुटा-घुटाया रहता, और लाडमल ने जाने क्यों बाल और दाढ़ी बढ़ा रखे थे !

एक रोज दोनों बैठे हुए मजे से गप-शप कर रहे थे कि हजारीमल ने कहा-"लाडमल, अब तक तुम से मैंने नहीं कहा, लेकिन तुम्हारी दाढ़ी देखने में कितनी अच्छी लगती है। अब तक जाने मैंने कितनी दाढ़ियाँ देखी होंगी, लेकिन तुम्हारी दाढ़ी की तरह हमारे देश में एक भी दाढ़ी नहीं मिलेगी।"

यह सुन कर लाडमल अभिमान से बोला-"ठीक कहते हो हजारीमल, सब लोग ऐसा ही कहते हैं। इतना ही नहीं; कितने लोगों ने मेरी दाढ़ी पर नज़र भी गढ़ाई। गुञ्जाइश होती तो वे खरीद लेने को भी तैयार हैं।"

उसकी बात सुनते ही हजारीमल ने बड़ी आतुरता से पूछा-"कौन हैं वे लोग ? वे क्यों ? मैं ही खरीद लूँगा, बोलो क्या लोगे?"

धन के लोभ से लाडमल के मन में सहसा अनेक तरह की कल्पनाएँ उठीं। अनायास बात के सिलसिले में वह बोल गया-"अच्छा, तो एक हजार मुहरें दे दो।"

"इसमें क्या है? ले लो एक हजार मुहरें। मैंने सोचा था कि तुम न जाने इसका कितना मोल माँग बैठो।" कह कर उसने कुछ बयाना उसके हाथ में रख दिया।

यह देख कर लाडमल घबरा गया। हजारीमल एक शर्त रख कर बोला -"भाई !

श्यामलाल



अब से यह दाढ़ी मेरी हो गई। जब तक मैं तुम्हें इसकी पूरी कीमत न चुका दूँ, तब तक अमानत की तरह, यह तुम्हारे पास ही रहेगी। खुब सावधानी से इसकी रक्षा करना। समझे ! मेरी इस दाढ़ी में मेरी इच्छा के अनुसार ही तुम्हें तेल डालना होगा। मेरी रूचि के अनुसार ही इसको कतरवाना भी होगा।" लाडमल ने झट उसकी शर्त मञ्जूर कर ली। कानूनी कागज पत्र लिखित रूप में तैयार कर लिए गए। हजारीमल ने फिर से एक बार चेतावनी दी-"देखो, भाई ! अब अगर कोई इस दाढ़ी को देख कर इसकी तारीफ़ करने लगे तो तुम कह देना-

'भाई! यह दाढ़ी अब मेरी नहीं है, अमुक आदमी की है, उसने दाम देकर इसे खरीद लिया है।' इस प्रकार से तुम्हें समझा कर कहना होगा। समझे ?"

"बहुत अच्छा!" लाडमल ने कहा।

दूसरे दिन से .....

अब वक्त-बेवक्त हजारीमल लाडमल के पास आने लगा। उसको यों आते देख कर लाडमल पूछता- "कैसे आए भाई ?"

इसके जवाब में हजारीमल कह देता-"और कुछ नहीं! सिर्फ मेरी दाढ़ी कैसी है? यह देखने के लिए आ गया हूँ।" कभी-कभी तमतमाता हुआ वह आता और कहने लगता- "यह क्या है भाई ? मेरी दाढ़ी सब नष्ट होती जा रही है, लहराती रहने वाली इस दाढ़ी में सस्ते नारियल का तेल डाल कर तुमने इसे ऐसा कर दिया और यह बेसिलसिला कंघी डालना क्या? जिसने सभ्यता का नाम नहीं।" यो व्यङ्ग से कह कर बह चिल्लाने लग जाता था। इस तरह आए दिन होहल्ला मचाते देख कर लाडमल के प्राण ऊबने लगे। अब मित्रता निभाना मुश्किल हो गया।

दोनों दिलों में खटाई पड़ गई। "भाई ! तुम्हें बड़ा पुण्य होगा, किसी तरह लोभ-लालच के कारण आगा-पीछा सोचे बगैर मैंने तुम्हारी शर्त मान ली थी। अब मेरी दाढ़ी मुझे दे दो और अपनी कीमत बापस ले लो।" यों लाडमल गिड़गिड़ाने लगा।

हजारीमल ने उसकी बात न मानी। यह देख कर लाडमल ने कहा- "अच्छा! नहीं मानते हो तो जितना तुमने दिया है, उसका दुगना ले लो।" लेकिन हजारीमल कुछ नहीं बोला। यह देख कर लाडमल किसी प्रकार इस बला से पिण्ड छुड़ाने के लिए चार हजार मुहरें देने को तैयार हो गया। "देखें, यह कहाँ तक जाता है।" यह सोच कर हजारीमल अकड़ता ही चला गया।

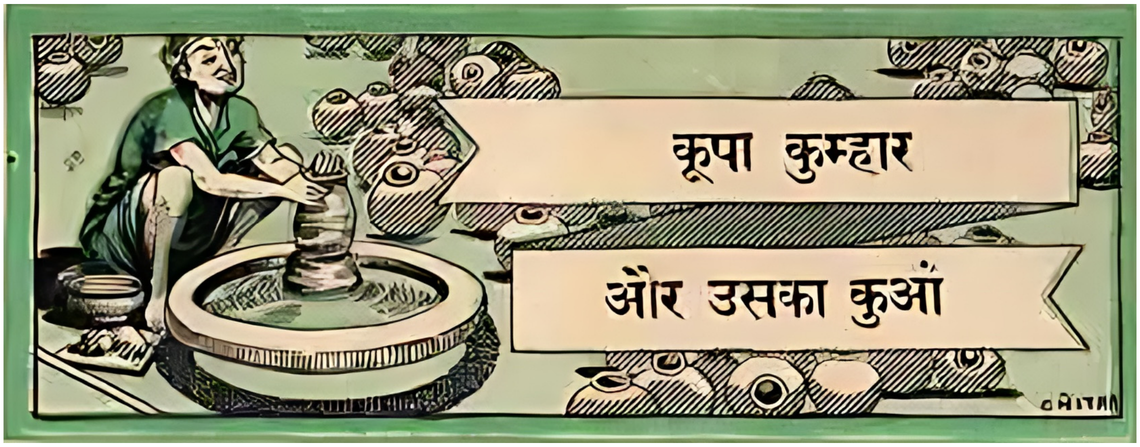
लाडमल को कुछ नहीं सूझा, बड़ी मुश्किल में पड़ गया वह। यों एक दिन रात के वक्त हजारीमल अपनी आदत के मुताबिक उसके पास आ धमका। लाडमल गाढ़ी नींद में था; फिर भी उसने जोर से उसकी दाढ़ी खींची। आश्चर्य! दाढ़ी का गुच्छा का गुच्छा उसके हाथ में आ गया।

लाडमल धड़-धड़ा कर उठा और हो-हल्ला मचाता हुआ हाकिम के



पास फरियाद करने दौड़ गया। चतुर हाकिम दोनों के मन की बात समझ गया और उसने फैसला किया-"दाढ़ी मैंने खरीदी, इस पर हक मेरा है। इस बहाने से हजारीमल का अपने दोस्त को सताना और इस तकलीफ को न सह कर लाडमल का नकली दाढ़ी लगाना साबित होता है।

इस लिए हजारीमल ने आधी रात के समय लाडमल के घर पर जाकर बल-पूर्वक जो दाढ़ी खींच ली वह उसे ले जाए और लाडमल को दाढ़ी का जो दाम चुकाना था, उसे खर्च के साथ फौरन चुका दे।"



मारवाड़ राज्य में जीतरा नानक एक गाँव है। बहुत पहले उसमें कूपा नामक एक कुम्हार रहता था। वह सज्जन, भक्त, ज्ञानी और विरक्त व्यक्ति था। उसकी पत्नी उसके लायक गृहणी और बड़ी गुणवन्ती थी। ये दोनों मेहनत-मशक्कत करके गुजर-बसर करते थे, और पाण्डुरङ्ग- स्वामी तथा उनके भक्तों की अत्यन्त श्रद्धा भाव से सेवा सत्कार करते रहते थे।

वे रोज एक-एक घड़ा गढ़ा करते थे, और महीना भर तक जमा करते जाते थे। फिर महीना पूरा होते ही तीसों घड़ों को एक साथ बेच देते थे। उससे जो आमदनी होती थी, उसकी एक चौथाई भगवान के भक्तों और साधुओं के लिए रख छोड़ते थे और जो बच जाता था उससे अपनी गुजर-बसर करते थे।

इस प्रकार जीवन बिताने वाले उस कुम्हार की अपने ही गाँव में नहीं, पास-पड़ोस के गाँव में भी तारीफ होने लगी। लोग कहने लगे-"देखो, वह कूपा कुम्हार कितना धर्मात्मा, कितना हरि-भक्त, कैसा साधक और कैसा सेवा परायण है।"

लेकिन यहाँ के राजा को यह बात सुन कर कूपा के प्रति ईर्षा पैदा हो गई। इसलिए उस ईर्षा के कारण उसने हुक्म दिया-"सब कुम्हारों को घर पीछे हर महीने राज कर के रूप में दस-दस घड़े देने पड़ेंगे।" खाते-पीते कुम्हार राजा की आज्ञा के अनुसार राज कर चुकाने लगे। परन्तु कूपा कुम्हार राज कर देने में असमर्थ हो गया, और बीबी-पुत्र के साथ दिवानखाने में जाकर हल्ला मचाने लगा। राजा ने उनकी बातें सुन कर व्यङ्ग से जवाब



दिया-"तुम्हारी बात क्या है भाई ? तुमने तो दान-धर्म करके दुनियाँ में बड़ी कीर्ति प्राप्त कर ली है। ऐसे महात्मा को यह छोटा सा राज कर चुकाना कौन सी बड़ी बात है?" कुम्हार ने बहुत हाथ-पाँव जोडे, विनती की, लेकिन उस निर्दय राजा ने उसकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया। अब करना क्या था ? कुम्हार निराश होकर घर लौट आया, और अपनी औरत के साथ मिल कर दुगनी मेहनत करने लगा। कितनी भी मेहनत की, लेकिन तीस घड़े से वह ज्यादा न बना सका। यह देख कर उसकी निराशा बेहद हो गई।

लेकिन एक दिन उसकी औरत ने अवाँ लगाया और पक जाने पर जब उसे खोला तो उस में तीस के बदले चालीस घड़े निकले।

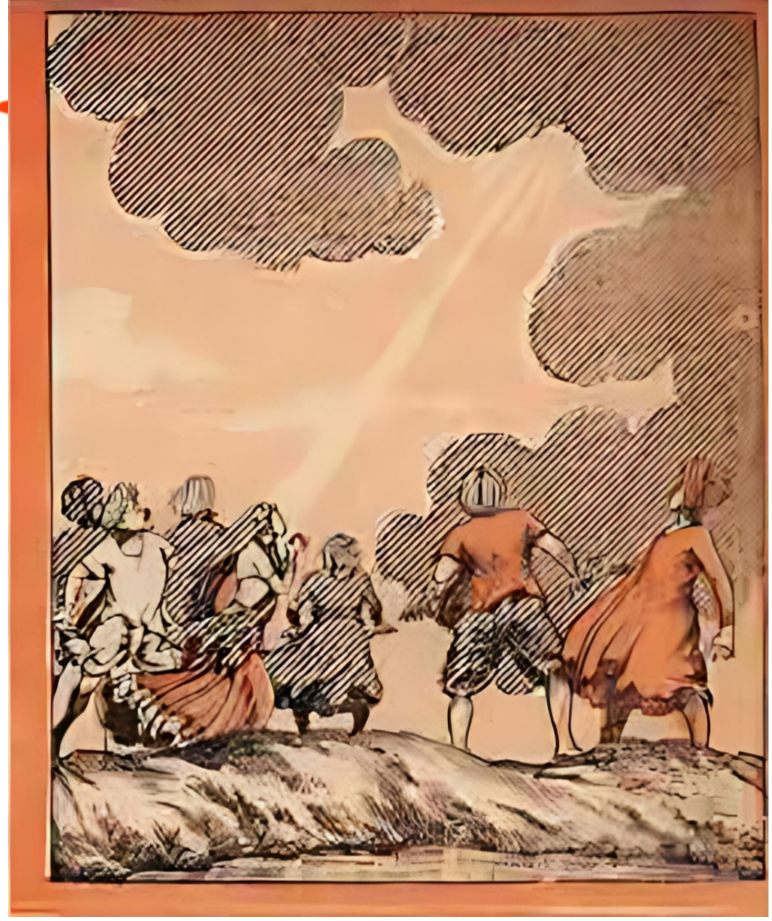
यह सब उसी भगवान पाण्डुरङ्ग की महिमा का फल है। इस बिश्वास से उस कुम्हार और भी उत्साह के साथ भगवान की पूजा और मक्तों का सेवा सत्कार करना शुरू कर दिया। साथ ही राज कर में दस घड़े दे कर वह सुख-पूर्वक रहने लगा।

इस प्रकार जब यह रह रहे थे, तब साधुओं का एक दल जीतरा गाँव में आया और सीधे उस कुम्हार के द्वार पर पहुँच कर 'जय सीताराम' करने लगा। उनकी आवाज़ सुन कर कूपा पत्नी के साथ बाहर निकला और साधुओं को आदर-मान से बिठा कर कुशल-प्रदन करने लगा।

उनमें से एक साधु बोला-"मक्त-शिरोमणि ! आज पाँच-छह रोज से हम लोगों ने भोजन नहीं किया है। आज तुम्हारे घर पर भोजन करने के इरादे से हम लोग आए है।" यह सुन कर वह कुम्हार बोला-"भक्त-रक्षक पाण्डुरङ्ग की दया जब तक हम पर है, चिन्ता किस बात की ?"

उनके भोजन आदि के लिए जरूरी सामान लाना था। लेकिन इसके पास इतने पैसे कहाँ थे? इसलिए वह एक बनिए के पास पहुँचा। बनिया उसको देख कर बोला-"क्या भाई कूपा ! अब तक जो उधार लिया था, वह तो चुकाया ही नहीं और अब फिर माँगने आ गए हो ? अच्छा, मुझे एक कुआँ खुदवाना है, क्या खोद दोगे ?" कुम्हार ने मञ्जू र कर लिया। बनिए ने उसे रुपए दे दिए। कुम्हार सब सामान खरीदकर घर पहुँचा और धूम-धाम से साधुओं को खिलाया पिलाया। फिर टोकरी कुदाल लेकर वह कुआँ खोदने बनिए के घर जा पहुँचा और अपनी औरत के साथ वह कुआँ खोदने लग गया।

एक दिन खोदा, दूसरे दिन खोदा, तीसरे दिन खोद ही रहा था कि भगवान की विशेष दया से नीचे से महा-उज्ज्वल जल धारा निकली। लोग आश्चर्य से वहाँ जमा हो गए और उस जल धारा को देखने लगे। देखते-देखते कूपा जहाँ खड़ा था, वहाँ की धरती धँसी और वह उस में समा गया।



पति को गिरते हुए देख कर पत्नी भी सुरङ्ग में कूदने को तैयार हो गई। किन्तु लोगों ने उसे पकड़ लिया। इतने में आकाश वाणी हुई-"देवी ! तुम्हारा पति मरा नहीं है। लेकिन वह एक साल के पहले निकल नहीं सकता, एक साल बाद वह अपने आप आ जाएगा। उसके बाद तुम दोनों मिल कर संसार में भक्ति-भाव का प्रचार करना, अभी किसी प्रकार को जल्दी न करना।" उनकी बात मान कर वह घर लौट आई और एकान्त में बैठ कर भगवान का ध्यान करने लगी। इस तरह एक साल की अवध पूरी होते ही, लोगों को उस कुँए के पास हर रात को

ऐसी आवाज सुनाई देने लगी जैसे कि कूपा कुम्हार हरि-कीर्तन कर रहा हो।

यह देख कर सब लोग विस्मित हो उठे। यह समाचार एक कान से दूसरे कान फैलता हुआ राजा के कानों में भी पड़ा। राजा सोचने लगा यह कैसा आश्चर्य है ? वह खुद कुँए के पास गया और अपनी देख-भाल में खुदवाने लगा। जब उसके ऊपर की मिट्टी हटाई गई तो देखा गया कि शंख-चक्र गदा-पद्म और कौस्तभ-मणि से उद्भासित वहाँ साक्षात भगवान ही विराजमान थे।

उनके सामने ही कूपा कुम्हार तन्मय होकर हरि कीर्तन कर रहा था। राजा को यह दृश्य भी दिखाई पड़ा।

यह देख कर राजा ने उस महात्मा कुम्हार को बाहर निकाला और गाँव-वासियों को दिखाया। सब लोग दौड़े-दौड़े आए और उसके चरणों पर पड़ कर प्रणाम करने लगे। जिसने कुआँ खोदने को कहा था, वह बनिया और जिसने राजकर लगाया था, वह राजा दोनों आकर उस से क्षमा-याचना करने लगे।

यह देख कर वह महात्मा उन लोगों से कहने लगा-"भाइयो। यह तो आप लोगों की ही कृपा का फल है कि मैं एक साल तक निश्चित होकर भगवान के भजन करने का मौका पा सका। इसका सारा श्रेय आप लोगों को ही है।" उसके बाद उस प्रदेश में अनेक मन्दिर बनाने लग गए और लोगों में भक्ति भावना की बाढ़ आ गई।

आज तक कूपा कुम्हार का वह कुआँ, भगवान की दया से पाण्डुरङ्ग क्षेत्र में बना हुआ है। भगवान के भक्त जो वहाँ जाते हैं, पहले उस कुँप के दर्शन करते हैं तब भगवान का।





यह उन दिनों की बात है, जब स्वामी विवेकानन्द ने सन्यास लेकर देश का भ्रमण करना शुरू कर दिया था। गर्मी के दिन थे, दुपहरी बेला थी; उस समय विवेकानन्द को राजस्थान में रेल का सफर करना पड़ा। उनके पास ही एक व्यापारी भी बैठा हुआ था। स्वामीजी ने कई दिनो से कुछ नहीं स्वाया था। स्टेशन-स्टेशन पर पानी पिलाने बालों से वे कुछ पानी माँगते जाते थे, लेकिन हाथ में कुछ न पड़ने के कारण वह उनको पानी दिए बिना ही दूसरी जगह चला जाता था। यों प्यास के मारे उनका कण्ठ सूखने लग गया।

स्वामीजी के पास जो व्यापारी बैठा हुआ था, वह साधु-सन्यासियों का परम विद्वेषी था। वह धनवान था; इसलिए रास्ते भर फल, दूध, अनेक तरह के पकवान, ठण्डा पानी वगैरह खरीद कर चढ़ाता जाता था और स्वामीजी को देख कर हँसी-दिल्लगी, और व्यङ्ग-बौछार भी करता जाता था।

आखिर वे दोनो तारीघाट नामक स्टेशन पर उतरे। वहाँ दरिद्र स्वामी का मुँह कौन देखता ! स्टेशन पर सिर छिपाने के लिए कोई छाया-दार जगह भी नहीं मिल सकी। इसलिए बदन पर का कपड़ा भिगो कर स्टेशन के बाहर बदन जलती हुई बालू पर, एक खम्भे से सट कर, स्वामीजी बैठ गए। उनके सामने ही कुछ दूर ठण्डी जगह पर मुलायम आसन डाल कर अनेक तरह के भोज्य पदार्थों के साथ गर्व से बैठा हुआ वह व्यापारी सितारे की तरह चमक रहा था।

लेकिन वह चुप-चाप बैठा नहीं रहा। ढिठाई के साथ बोला-"स्वामीजी महाराज ! इधर देखिए तो सही। आहा ! कितना ठण्डा पानी है। ओहो ! कितने मजेदार लड्डू हैं।

शान्ति श्रीवास्तव



यह खास्ता पूरी और कचौड़ियाँ तो देखो। सन्यासी हो कर क्या फल पा रहे हो? कुछ काम करके पैसे कमाओ और सुख भोगो। इस दरिद्रता से तुम्हें क्या मिलेगा? अरे, जेब खाली रहने से पेट कैसे खाली रह सकेगा ? जान-बूझ कर जो आफत मोल लेता है उसके लिए कौन क्या कर सकता है ? भोगों ! अपनी करनी का फल खूब भोगो।" यों मखौल उड़ाता वह उद्धत आदमी उन्हें अनेक तरह से ताना मारता रहा।

इन सब हास-परिहस तथा बेवकूफ़ी की बातों से जरा भी नाराज न होकर स्वामीजी एकदम चुपचाप बैठे रह गए। इतने में न जाने कहाँ से एक आदमी दाएँ हाथ में एक गठरी, गिलास और बाएँ हाथ में ठण्डे पानी वाली मिट्टी की एक सुराही लिए और बगल में एक मुलायम छोटी-सी दरी दबाए, दौड़ा-दौड़ा स्टेशन पर आया। आते ही उसने एक साफ-सुथरी जगह में वह दरी बिछा दी। फिर गठरी खोली और उस में से तरह-तरह की खाने की चीजें निकाल कर पत्तल पर फैला दीं। फिर बड़े उल्लास से वह स्वामीजी के पास गया और बोला-"महाराज ! इधर पधारिए और भोग लगाइए।" अति विनीत भाव से वह प्रार्थना करने लग गया।

स्वामीजी आश्चर्य चकित रह गए। वह व्यापारी, जिसने उन्हें इतना चिढ़ाया था, मुँहबाए आँखें फाड़-फाड़ कर, पत्थर की मूर्ति की तरह, देखने लग गया।

वह नवागत पुरुष हाथ जोड़ कर स्वामीजी से इस प्रकार आग्रह करने लगा-"स्वामीजी ! अब देर मत कीजिए। जल्दी आकर भोजन कर लीजिए।"

इस पर स्वामीजी बोले-"भाई! तुम कुछ भूल रहे हो क्या? किसे देख कर क्या

सोच रहे हो। तुम्हें कहीं मैंने देखा हो ऐसा तो याद नहीं आ रहा है।"

इस पर वह ग्रामवासी बोला-"नहीं ! नहीं ! स्वामीजी मेरी आँखें मुझे धोखा नहीं दे रही है। मैं आप को खूब पहचानना हूँ। इसमें भूल-चूक की कोई बात नहीं है।" यह सब देख कर अत्यन्त आश्चर्य से स्वामीजी बोले-"भाई तुम्हारी बातें मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रही है। क्या तुमने मुझे कहीं देखा है ?"



इस पर वह कहने लगा-"स्वामीजी ! मैं आप के गाँव का ही मिठाई वाला व्यापारी हूँ। आज सबेरे भोजन करके आदत के मुताबिक थोड़ी देर के लिए आँखें मूँद पर लेटा हुआ था, उसी समय एक स्वप्न देखने लग गया। स्वप्न में भगवान रामचन्द्र की मूर्ति मेरे सामने आ खड़ी हुई और आप की ही--हूबहू आप की ही तरह के आदमी को उँगली से दिखा कर बोली-'देखो, वह देखो। तुम्हारे सामने जो व्यक्ति दिखाई पड़ रहा है, उसने कल से कुछ नहीं खाया है और भारी कष्ट झेल रहा है। उसका वह सारा कष्ट मुझे ही भोगना पड़ रहा है। इसलिए उठो! फौरन उठो ! पूरी तरकारी बना लो और मिठाइयों, ठण्डा पानी, बैठने के लिए एक मुलायम आसन वगैरह लेकर दौड़े हुए स्टेशन को चले जाओ।' स्वप्न की बात पर कौन विश्वास करे, यह सोच कर में करवट बदल कर सो गया।

तब भगवान रामचन्द्र ने फिर से दर्शन दिए और वे कहने लगे- 'अरे क्या जल्दी नहीं उठोगे ? क्या मेरे कहे अनुसार नहीं करोगे?' यह कह कर उन्होंने मेरी आँखों में उँगली भोंक कर जगा दिया। पुलकित होता हुआ मैं उठा और जल्दी-जल्दी पूरी तरकारी बनाई पहले से बना कर रखी हुई बढ़िया

मिठाई, गुलाब जल पड़ा ठण्डा पानी और एक मुलायम दरी वगैरह लेकर कहीं देर न हो जाए इस डर से दौड़ता हुआ आया हूँ। स्वप्न में जो महात्मा मुझे दीख पड़े थे, वे आप ही हैं। और मैंने दूर ही से आप को पहचान लिया था। इसमें जरा भी भोखा या भ्रम नहीं है। अब देर न कीजिए। मेहरबानी करके ठण्डा होने के पहले ही इन सब चीजों को स्वीकार करके मुझे कृतार्थ कर दीजिए।" इस प्रकार वह भक्ति-भाव से अनुनय-विनय करता रहा।

स्वामीजी उठे और खुशी से पेट भर भोजन करके जी भर के ठण्डा पानी पिया, फिर उस मिठाई वाले व्यापारी के प्रति वे अपनी कृतज्ञता जताने जा ही रहे थे कि वह बोल उठा-"स्वामीजी ! नहीं ! नहीं, मेरी कोई तारीफ़ न कीजिए, इसमें मेरा कोई श्रेय नहीं है। यह सब भगवान रामचन्द्र की प्रेरणा का फल है। उन्हीं की स्तुति कीजिए।" अब जिस व्यापारी ने स्वामीजी का परिहास किया था, उस पर गाज-सी गिर पड़ी और उसे एकदम काठ मार गया। कुछ देर के बाद वह होश में आया और कुछ याद करता और पछताता स्वामीजी के पैरों पर गिर कर उनकी पद-धूलि को सिर पर लगा कर कहने लगा-"स्वामीजी ! क्षमा कीजिए।"

यह देख कर स्वामीजी की आँखों में भक्ति-भाव के उच्छवास उमड़ आए। उन्हें ऐसा जान पड़ा कि जैसे उनके जीवन का एक बहुत बड़ा सन्देह मिट गया हो, और ये आनन्द से भर गए। उनके हृदय में भक्ति की रागिनी बज उठी-"राम! सुगुणोत्तम राम! करुणा कृपालु राम ! जिसने कभी तुम मर विश्वास किया, उस पर से तुम्हारी दया दृष्टि कभी हटी नहीं।"





ब्रह्मदत्त जब काशी का राजा था, उस समय भगवान बोधिसत्व एक बढ़िया घोड़े के रूप में पैदा हुए। वह राजा के और घोड़ों की अपेक्षा अधिक बढ़िया और पञ्चकल्याण माना जाने लगा। इसी लिए उसका पालन-पोषण और आलङ्करण एक विशेष प्रकार की शाही शान-शौकत के साथ होने लगा। राजा के घोड़ों में सबसे प्रसिद्ध उस पञ्चकल्याण को जन्म के तीसरे साल से ही बढ़िया से बढ़िया अनाज और घासों से तैयार कर आहार मिलने लगा। इस के अलावा उसे हजार मुहरों वाली एक सोने की थाली में परोस कर राज-भोग भी खिलाया जाता था। जब यह खाने लगता था तो पकवानों की खुशबू से सारा अस्तबल गम-गम करने लग जाता था। उस उस्तबल के चारों ओर मनोहर परदे लटक रहे थे। दिन रात वह अस्वल धूप-दीप अगरबत्ती तथा अनेक तरह के सुगन्धित पदार्थों से सुरभित और प्रकाशित रहा करता था।

ऐसे सर्वोत्तम घोड़े से शोभित काशी राज को देख कर आस-पास के सामन्त-राजाओं को कुछ ईर्ष्या-सी होने लग गई। एक दिन सात सामन्त-राजा एक जगह जमा हुए और काशीराज के पास सन्देश भेजा-"आप या तो अपना राज्य हमें सौंप दीजिए या हम से युद्ध करने को तैयार हो जाइए। फौरन काशीराज ने मन्त्रियों को बुलाया और सभी बातें खोल कर उन से कहीं। यह सब सुन कर मन्त्रियों ने सलाह दी-"महाराज, उनके मुकाबिले के लिए मैदाने-जङ्ग में खुद आप को जाने की जरूरत नहीं। वीरवर सेनापति बीरवर्मा को भेज देना काफ़ी है। वह उनका सिर कुचल देगा;

सूरज नारायण सिंह



यदि सेनापति उन्हें जीत न सका, तब उसके ऊपर हम विचार करेंगे।"

यह सुनकर काशी राज ने सेनापति को बुलाया और उससे पूछा- "वीरवर्मा, सात सामन्त-सरदार इस समय हमारे विरुद्ध उठ खडे हुए हैं। क्या उन सातों को जीतना तुम्हारे लिए सम्भव होगा ?" काशीराज की बात सुनकर बड़ी वीरता से वीरवर्मा बोला-"महाराज, इसके लिए अगर आप अपने सब से प्यारे पञ्चकल्याण को मेरे हाथों में सौंप दें, तो इन सात राजाओं की क्या हस्ती ? मैं समस्त भूमण्डल को जीत कर आप के चरणों में लाकर रख दूँगा।"

सेनापति की बात सुनकर राजा बहुत खुश हुआ, और पञ्चकल्याण को साथ करके सेनापति को साज-सज्जा के साथ विजय यात्रा के लिए भेज दिया।

राजा के पास से पञ्चकल्याण को लेकर सेनापति शीघ्र युद्ध की तैयारी में लग गया। वीरवर्मा बिजली की तरह चमकता हुआ किले से बाहर निकला, और बड़ी बहादुरी से लड़ कर उसने पहले सामन्त राज को पकड़ा और उसे कैदी बना लिया। इस के बाद वह फिर मैदाने जङ्ग में पहुँचा और दूसरे सामन्त राज को पकड़ा, फिर तीसरे को पकड़ा, और इसी प्रकार पाँच राजओं को पकड़ उसने कैदी बना लिया।

अब तक जीत परी हासिल करने वाला वीरवर्मा छठे मोर्चे पर जब पहुँचा और विजयी होने जा ही रहा था, कि पञ्चकल्याण घायल हो गया और खून से लत-पथ होकर गिर पड़ा।

वीरवर्मा ने पञ्चकल्याण को एक ओर हटवा दिया, और उसने दूसरा घोड़ा लेकर लड़ने जाने की बात सोची। यह सोच कर वह पञ्चकल्याण की लगाम वगैरह उतारने लगा।

यह देख कर पञ्चकल्याण के रूप में साक्षात भगवान को बोधिसत्व ने सेनापति की ओर देख कर कहा-"ऐ वीर शिरोमणि! यह क्या ? मुझे चोट लगते ही तुम दूसरे घोड़े पर चढ़ने की तैयारी करने लग गए! सातवें मुकाम वाले राजा को पकड़ना क्या उस घोड़े से सम्भव हो सकेगा ? अगर तू दूसरा घोड़ा लेकर लड़ाई में गया, तो अब तक मैंने जो काम किया है, उस पर पानी फिर जाएगा। साथ ही तू फिजूल ही शत्रु के हाथों में पड़ कर जान से हाथ धो बैठेगा। सातवें मोर्चे को तोड़ कर सातवें सामन्त-राज को जीतना सिर्फ एक मुझ से ही सम्भव हो सकता है, दूसरा कोई घोड़ा यह काम नहीं कर सकता है। क्या यह बात तुम के मालूम नहीं ?" ऐसा कह कर यह उदास हो गया।

लेकिन उदास होकर भी वह चुप नहीं रहा। वीरवर्मा को पास बुला कर फिर कहने लगा-"ओ शूर-शिरोमणि सेनापति, उस सातवें शत्रु राज को पकड़ने वाला घोड़ा मेरे सिवा और दूसरा नहीं हो सकता। यह समझ लो। अब तक मैंने जो काम किया है, उसे व्यर्थ न कर देना। परिस्थिति कैसी भी क्यों न हो,



हमें धीरज और साहस कभी नहीं छोड़ना चाहिए। मुझे जहाँ चोट लगी है, उस पैर में पट्टी बाँध दो, मेरा घाव जल्द भर जाएगा।

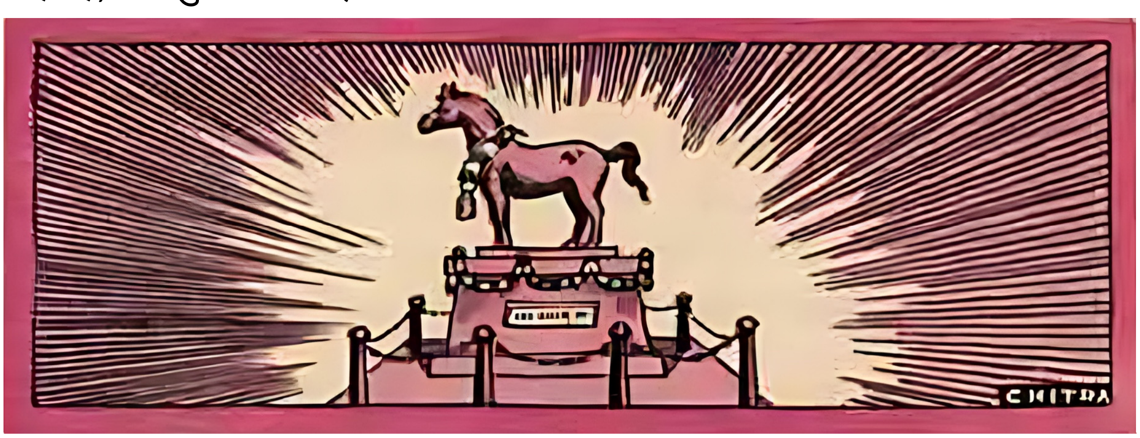
ओ वीर सेनापति ! खूब याद रखो-यद्यपि बाण लगने के कारण में घायल हो गया हूँ, फिर भी मुझसे बढ़ कर दूसरा कोई घोड़ा तुम्हारे पास नहीं। मुझे छोड़ो मत, मुझ पर विश्वास करके मेरे घाव को चङ्गा करने का उपाय करो। फिर मुझे लेकर रण-क्षेत्र में पहुँचो।"

फौरन वीरवर्मा पञ्चकल्याण के पैर में पट्टी बाँध कर उसके उपचार में लग गया। थोड़ी ही देर में पञ्चकल्याण उठ खड़ा हुआ,

और सेनापति उस पर सवार होकर लड़ाई के मैदान में चला गया। पञ्चकल्याण बिजली की तरह चमकता जा रहा था। जाते ही उसने सातवें मोर्चे को तोड़ दिया और मोर्चा टूटते ही बीरवर्मा ने सातवें सामन्त राज को पकड़ कर बन्दी बना लिया। इस प्रकार उस युद्ध में बीरवर्मा सम्पूर्ण रूप से विजयी हुआ।

फिर बन्दी बने हुए उन सातों सामन्त राजाओं को सेना के साथ लेकर सेनापति वीरवर्मा काशीराज के सामने उपस्थित हुआ। पञ्चकल्याण के रूप में रहने वाले भगवान बोधिसत्व भी वहाँ आए, आकर उन्होंने राजा से कहा-"महाराज, ये सातों सामन्त तुम्हारे साथी राजा है। इनकी हत्या करने में तुम्हारी कोई शोभा नहीं। उनको अपमानित करना भी उचित नहीं। उचित मार्ग यही है, कि तुम उनसे एक शर्त करा लो और उस शर्त के अनुसार उन्हें रहने का आदेश दो। अगर ये लोग उस शर्त को मञ्जूर कर ले, तो उन्हें छोड़ दो और आदर मान से विदा कर दो। हे राजा, तुम उदार बनो। धर्म-बुद्धि और न्याय-नीति से राज्य-पालन करो।" भगवान बोधिसत्व ने राजा को यह उपदेश दिया। राजा के सिपाहियों ने उस घोड़े पर से सब साज उतार पर अलग कर दिया। साज उतरते ही पञ्चकल्यण के रूप में रहने वाले भगवान बोधिसत्व स्वर्ग लोक को चले गए।

काशीराज की आज्ञा से अत्यन्त गौरव-गान के साथ उस घोड़े का श्राद्ध-कर्म किया गया। फिर सातों सामन्त राज को बुला कर आदर के साथ उन्हें विदा कर दिया। उस दिन से भगवान बोधिसत्व के आदेशानुसार काशी-राज्य में न्याय और धर्म का शासन स्थापित हो गया।





यह उस समय की बात है, जब मेवाड़ पर राणा संग्रामसिंह का राज्य था। राजा का एक विश्वासी अनुचर बनवीर था। बनवीर अनुचर ही नहीं, प्राण प्रिय मित्र भी था। राज-काज सम्बन्धी बातों में उसका बड़ा हाथ था। धीरे-धीरे राणा ने उसे प्रधान मन्त्री बना दिया।

वनवीर एक गरीब धाय का बेटा था। चूँकि वह राज दरबार में पाला-पोसा गया था, इसलिए बहुत-सी अन्दरूनी बातों से उसका सहज ही परिचय हो गया था। यों वह राज

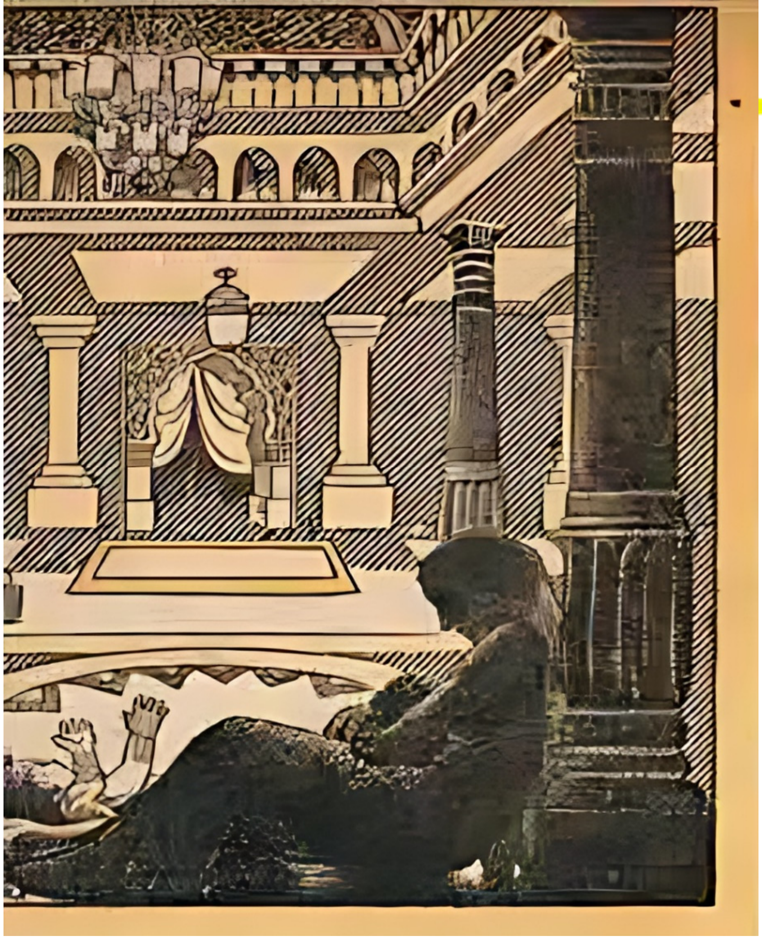
कुटुम्ब में भी खूब घुल मिल गया था।

प्रधानता प्राप्त कर लेना बुरा नहीं। लेकिन शुरू से ही बनवीर के मन में एक चोर घुसा हुआ था। वह चोर उसके कानों में बराबर कहता रहता था-"राणा संग्रामसिंह का अब बुढ़ापा आ गया है, वह अब और कितने दिन जीते रहेंगे ? किसी न किसी तरह से यह राज्य मुझे हथिया लेना चाहिए। यह सङ्कल्प बहुत दिनों से बनवीर के मनो-राज्य में पनपता आ रहा था।

मृत्यु को समीप जान कर मरण-शय्या पर पड़े राणा संग्रामसिंह ने बनवीर को पास बुलाया और गम्भीरता से कहा-"बनवीर, अब तक तुम मेरा दाहिना हाथ बने हुए थे, उतने से ही उसकी समाप्ति नहीं होगी। तुम्हारे द्वारा हमारे कुटुम्ब की जो भलाई होने वाली है, वह आगे-आगे है। यह देखो अपने गोदी के लाल उदयसिंह को तुम्हारे हाथों में सोंपता हूँ। इसका सर्वेसर्वा अब तुम्ही हो।" यह कह कर संग्रामसिंह ने सदा के लिए अपनी आँख मूँद ली।

राजभवन में अब वह प्रधान राज-पुरुष हो गया है, यह देख कर बनवीर खुशी से फूल उठा। राणाके मरते ही बनवीर उदयसिंह

ठाकुर जयराज सिंह



का संरक्षक बन गया। एक न एक दिन वह मेवाड़ का राजा होगा, यही उसकी सब से बड़ी लालसा थी।

दुध-मुँहे बच्चे उस भोले उदयसिंह को भला छल-कपट की दुरभिसन्धियाँ क्या मालूम थीं ? उदयसिंह एक घाय की गोद में पल रहा था। उस घाय का नाम था 'पन्ना'। पन्ना एक राजपूत स्त्री थी। राणाओं का नमक खा कर बढ़ी थी, इसलिए राणा के कुटुम्ब पर उसका बड़ा भारी श्रद्धा-भक्ति का भाव था। इसलिए उदयसिंह उसको प्राण समान प्यारा हो गया था। पन्ना का बेटा और उदयसिंह दोनों एक ही उम्र के थे। दोनों को एक समान दूब पिला कर वह पाल रही थी।

"लेकिन जब तक यह उदयसिंह जीवित है, तब तक मेरी इच्छा कैसे पूरी होगी?" यह बात बनवीर के मन में काँटे की तरह चुमती रहती थी।

आखिर बनवीर ने यह निश्चय किया कि इस बच्चे को उसे किसी-न-किसी तरह खपा ही देना चाहिए। इसलिए उसने उस बच्चे को खुद अपने हाथों मार डालने का सङ्कल्प किया। और गुप्त रीति से उसके लिए उपाय सोचने लगा।

इस कठिन समस्या को हल करने वाला विश्वास योग्य एक ही आदमी उसे दीख पड़ा, वह था 'बारी' नामका एक नाई। उस बारी को बनवीर ने तैयार कर रखा था- "उदयसिंह जब सो जाय तो ठीक समय पर आकर मुझ से कहो।" 'बारी' ने भी "बहुत अच्छा" कह कर हामी भर दी थी।

बनवीर के ऐसे राज्याधिकारी की बात वह कैसे टाल सकता था? लेकिन जब से उसने हामी भरी, वह घोर चिन्ता में पड़ गया। बारी ने राणा परिवार का नमक खाया था। इसलिए उसका रोम-रोम उसकी भलाई की भावना से भरा हुआ था। राजकुमार पर

बिपत्ति के इस बादल को छाया हुआ देख कर वह घबरा उठा और दुविधा से उसका हृदय दल-मलित होने लगा।

बनवीर के मन में जब से यह दुष्ट चिन्ता घर कर गई, तब से उसने राज-पुत्र उदयसिंह को उद्यान वन में ले जाकर रखा। इस में उद्देश्य यह था कि उसका वह सङ्कल्प आसानी से पूरा हो जाएगा।

अमावास्या की एक अँधेरी रात में बारी उस दिव्य भवन के अन्दर पन्ना धाय के पास पहुँचा और खड़ा होकर रोने लग गया। पन्ना उसी समय दोनो बच्चों को सुला कर बाहर आई थी।' बारी' को देखते ही वह घबरा उठी। "इस समय क्यों आए हो वारी भैया ?" बड़ी आतुरता से उसने पूछा।

"क्या कहूँ तुमसे पन्ना दीदी ! हमारे राजकुमार के प्राणों पर आपत्ति आ गई है। थोड़ी ही देर में आ रहा है वह दुष्ट.. हाथ में तलवार लिए हुए।" इतना कह कर वह व्याकुल हो गया।

"ओ मेरे लाल !" कह कर पन्ना ने दीर्घ साँस छोड़ी और मूर्छित होकर गिर पड़ी। 'बारी' ने पन्ना को उठाया और कहा-"दीदी! यह दुख करने का



समय नहीं है। हमें राजकुमार की रक्षा करनी चाहिए। इसकी चिन्ता पहले करो। वह यमदूत आ ही रहा होगा।"

पन्ना थोड़ी देर सोचती रही।

इतने में उसका मुँह बिजली की तरह चमक उठा। वह फौरन उठी और सोए हुए बच्चों के पास पहुँची। अपने बच्चे की फटी-पुरानी पोशाक उतार कर उसने राज-पुत्र उदयसिंह को पहना दी। और एक टोकरी में कुछ पुराने कपड़े डाल कर उसमें राज-पुत्र को सुला दिया। फिर झट-पट उसे 'बारी' के माथे पर रख कर धीरे से बोली-"वारी भैया, देखो! इस टोकरे में सोया हुआ है



राजकुमार। सीधे इसे ले जाओ अमुक गाँव में और 'अरहर' नामक व्यापारी के हाथ में सौंप दो।" और उसने झट-पट बारी को विदा कर दिया।

'बारी' के जाते ही देवी पन्ना ने अपने बच्चे को राज-पुत्र की पोशाक से आच्छादित कर दिया। फिर वह सोचने लगी-"अब आए, जो आना चाहे और करे जो करना चाहे। मैंने राजा का जो नमक खाया था, उसकी कीमत चुका दी। राजकुमार के प्राणों की रक्षा हो गई, मेरा ऋण चुक गया।" लेकिन माता हृदय स्थिर नहीं रह सका। सोए हुए अपने बच्चे के पास जाकर पन्ना ने उसे गोदी में उठा लिया और चूमते हुए बोली-

"लाल, मेरे रत्नों का पहाड़....! मेवाड़ के राणाओं के अन्न-जल से मेरा यह शरीर पला था, और इसके ऊपर राजकुमार की रक्षा का भार आ पड़ा था। इसीलिए आज तुम्हारे बलिदान की जरूरत आ पड़ी। तुम्हारी रुधिरधारा से मेवाड़ राज-वंश का वृक्ष हराभरा होने जा रहा है।" कह कर वह अविरल अश्रुधारा बहाने लगी।

आधी रात हुई। अन्धकार गहरा हुआ। उसी समय बनवीर आ धमका। उसके सम्मान के लिए पन्ना उठी और सिर झुका कर खड़ी हो गई।

बनवीर सीधे पालने के पास आकर खड़ा हुआ और कुशल प्रश्न करने लगा-"पन्ना !राजकुमार सुकुशल तो है न ?" लेकिन पन्ना चुप रही। क्रूर, कापुरुष, निर्दय और स्वार्थान्ध बनवीर ने कटारी उठाई और राक्षसी उल्लास से सोए हुए बच्चे की छाती में भोंक दी। बच्चे के मुँह से 'के' की एक चीख निकली और वह सदा के लिए टण्डा हो गया।

फिर वह दुष्ट बनवीर फौरन वहाँ से भाग खड़ा हुआ। बच्चे की चीख सुन कर लोग दौड़ कर वहाँ आ गए और पूछने लगे-

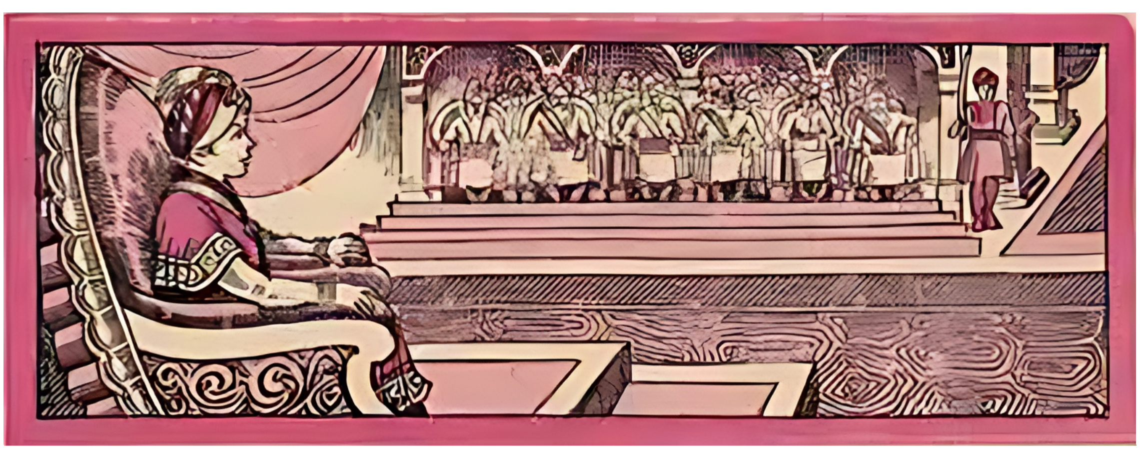
"यह क्या हुआ ?" कमरा रक्त से लथपथ हो रहा था और उसमें बेहोश पड़ी लोट रही थी पन्ना। लोगों ने उसे होश में लाने का उपचार किया। आखिर पन्ना ने आँखें खोलीं। लोगों ने खोद-खोद कर प्रश्न करना शुरू कर दिया-"यह सब क्या है ?" उदार हृदया पन्ना को चाहिए थी राज कुमार की रक्षा। वह हो चुकी थी। इसलिए उसने कहा-"मैं कुछ नहीं कह सकती- यह सब क्या हुआ।"

यह खबर सारे नगर में फैल गई। पन्ना के लिए लोग रोने-कलपने लग गए। कहीं यह रहस्य किसी को मालूम न हो जाए, इसलिए बनवीर ने पन्ना को नगर से भगा दिया। इससे क्या होता जाता था ? राजकुमार उदयसिंह तो उस व्यापारी के घर सुरक्षित रूप में बढ़ रहा था। मेवाड़ से निकाले जाने पर पन्ना भी उसी व्यापारी के घर आ पहुँची और काम करने लगी। वहाँ फिर राजकुमार की सेवा टहल करने का मौका उसे मिल गया। इस बात से पन्ना की आत्मा को बड़ी मारी तृप्ति हासिल हुई।

कुछ समय के बाद बनवीर के पाप का घड़ा फूटा। उसने जो षड्यन्त्र रचा था, सब को मालूम हो गया। प्रजा उसके विरुद्ध खड़ी हो गई और सब लोगों ने मिल कर उसे फाँसी पर लटका दिया।

उसके बाद पता के हाथों में पलने वाले राजकुमार उदयसिंह की खोज हुई और उसे राज सिंहासन पर बिठा दिया गया। पन्ना जब तक जीती रही, उदयसिंह की देख-भाल करती रही।

पन्ना का त्याग अद्भुत था। राजस्थान के इतिहास में उसका पवित्र नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा हुआ है। जिसकी स्मृति आज तक बनी हुई है।





पुराने जमाने में किसी समय यशोवर्मा काश्मीर देश का राजा था। फैसला देने में उसके समान न्यायी और धर्मात्मा राजा उस समय दूसरा कोई नहीं था।

उस समय ब्राह्मणों में किसी के साथ कोई अन्याय हुआ, तो वे राज दरबार में आ कर मरणान्तक उपवास शुरू कर देते थे। यह देख कर राजा फौरन बाहर आ जाता था, और जाँच पड़ताल करके पहले उनका इन्साफ कर देता था, फिर किसी दूसरे काम में हाथ लगाता था।

एक दिन एक ब्रह्मण आया। उस समय राजा भोजन करने जा रहा था। लेकिन उसको देख कर उसने कहा-"कहिए। आप की क्या शिकायत है ?"

यह सुन कर वह ब्रह्मण बोला- "महाराज ! देश-विदेश घूम कर मैंने सोने के सौ सिक्के जमा किए थे। आपके शासन की तारीफ़ सुन कर जन्म भूमि की ओर लौटा हूँ। रास्ते में चोरों का कहीं नाम भी नहीं था। बहुत आनन्द से आ रहा था। कल शाम को लहनपुर गाँव में पहुँचा! थका-माँदा था, इसलिए पेड़ के नीचे एक कुएँ पर लेटा रहा। सभी मुहरें थैली में रख कर मैंने कमर में बाँध ली थी।

सबरे उठा, तो देखता क्या हूँ कि, कमर से बैली खिसकी हुई है और सिक्के सब गायब हैं। जमीन पर सिर्फ एक सिक्का पड़ा हुआ मिला। वे सिके सब कुएँ में गिर गए थे। में भी उस कुएँ में गिर कर मरने को तैयार हो गया। लेकिन लहनपुर गाँव के सब लोग मेरा रोना सुन कर दौड़ आए और गिरने से पहले मुझे पकड़ लिया।

तब उन लोगों में से एक धीर पुरुष ने कहा -"अगर कुएँ में गिरे तुम्हारे सिक्के

मैं निकाल दूँ, तो तुम मुझे क्या दोगे?" उसकी यह बात सुनकर मैं बहुत ही प्रसन्न हो उठा। मुझे उस समय कुछ नहीं सूझा। इसलिए मैंने कह दिया-"भाई। मेरा सर्वस्व जाने कहाँ गायब हो गया है। अगर तुम उसे निकाल सको तो निकाल लाओ और तुम्हारी जो इच्छा हो उसमें से मुझे दे देना।"

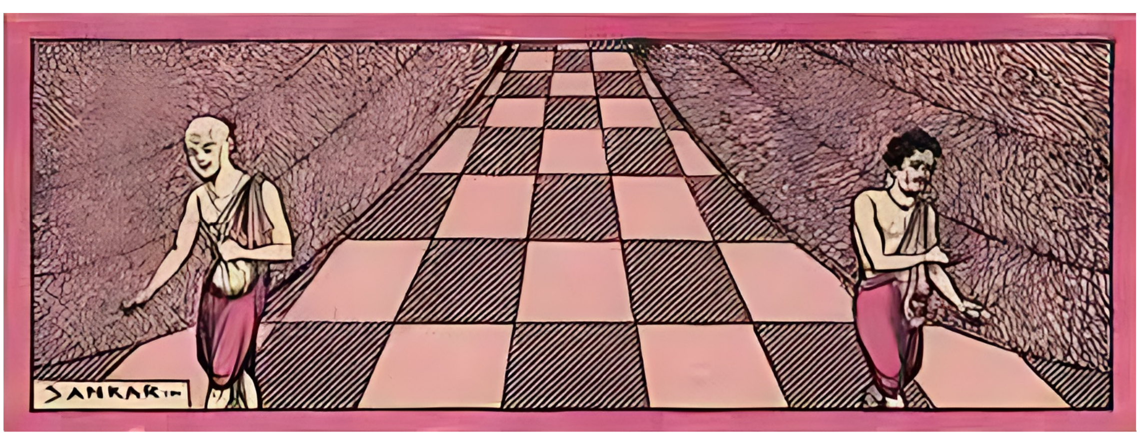
"फौरन वह आदमी कुएँ में उतरा और कुछ देर के बाद सिक्के लेकर वह बाहर आ गया और बोला-'तुमने कहा था न, कि अगर मैं सिक्के निकाल लाऊँ तो, मेरी जो इच्छा हो, उस में से तुम्हें दे दूँ। अब मेरी इच्छा है, कि तुम इनमें से सिर्फ दो सिक्के ले लो।' ऐसा कह कर उसने सिर्फ दो सिक्के मुझे दिए और बाकी सब खुद ले लिए। यह काम मुनासिब नहीं है--मैंने इस पर उसके साथ तर्क-वितर्क किए, लेकिन यहाँ जमा हुए सब लोग मेरी निन्दा करते हुए कहने लगे-'यशोवर्मा के राज्य में जितनी खोपड़ियाँ, उतनी बातें। तुम्हारी ही बात पर तो उसने ऐसा किया है। इसके लिए अब तुम्हें चूँ-चपड़ करने का कोई हक नहीं।' "



इस प्रकार उस ब्रह्मण ने अपनी राम-कहानी सुना कर कहा-"महाराज! मैंने जिस उद्देश्य से उसके साथ बात की, उसका उलटा अर्थ लेकर उसने मेरी गाढ़ी कमाई हड़प ली। इन सब बातों की जड़ में, विचार से, आप के इन्साफ करने ढङ्ग ही दोषी है। अब आप इसका फैसला कीजिए। और जब तक आप फैसला नहीं करते, मैं आप के दरबार में मरणान्तक-उपवास करता रहूँगा।"

"उस धनापहारी का कुल शील और नाम-धाम तुम्हें मालूम है ?" राजा ने उस ब्रह्मण से पूछा। "वह सब मुझे कुछ भी मालूम नहीं महाराज। मुँह देखने से मैं उसे

पहचान सकता हूँ, बस, सिर्फ इतना ही।" दूसरे दिन राजा के सिपाही लहनपुर गाँव में पहुँचे और वहाँ के सब आदमियों को राज दरबार में ले आए। उस ब्रह्मण ने धनापहारी व्यक्ति को पहचाना। महाराज यशोवर्मा ने सब बातें साफ-साफ बयान करने की आज्ञा दी। ब्राह्मण ने राजा से जो कुछ कहा था, ठीक वैसा ही बयान उस आदमी ने भी दिया। अन्त में उस आदमी ने कहा-"मैंने ब्राह्मण के कहने से ही सब कुछ किया था। अब आप जैसा उचित समझें, फैसला दें।" यह सुनकर, वहाँ जो लोग जमा थे किसी की समझ में नहीं आया कि उस आदमी का कुसूर क्या है? इसलिए सब लोग राजा का फैसला सुनने को उत्सुक हो उठे। दोनों की बातें सुन कर राजा कुछ देर मौन रह गया। इसके बाद उसने फैसला सुनाया-"इन सिक्कों का स्वामी असल में यह ब्राह्मण है। इसलिए इसे अंठानवे सिक्के दिए जाएँ, और दो सिके उस आदमी को मिलें जिसने उन्हें कुएँ से निकाला है। इस के बाद महाराज यशोवर्मा ने सबों को समझा कर कहा-"ब्राह्मण ने यही कहा था न, कि तुम्हारी जो इच्छा हो, उतना मुझे दे देना। इसमें उसका उद्देश्य यही था, कि जो मुनासिव हो, उसे मिले। कुएँ से निकालने वाले की मेहनत की मजूरी में उसके अंठानवे सिके चले जाएँगे, ऐसा सोच कर तो उसने नहीं कहा था। कुएँ से सिक्के निकालने वाले आदमी ने उसकी बाहरी बातों को पकड़ा, उसके मन की बातों को नहीं। अतएव धर्म अधर्म का सूक्ष्म विचार करने से और ब्राह्मण का असल उद्देश क्या था, इसको पकड़ने से, यही उचित जान पड़ता है, कि दो सिक्के यह आदमी ले सकता है; बाकी अंठानवे सिके ब्राह्मण के ही होंगे।





पहले के जमाने में फीरोजशाह नामक एक बादशाह था। उसकी बेगम का नाम था गुलनार। वह बेमिसाल सुन्दरी थी। गुलनार का सौंदर्य कैसा था--इसका वर्णन किसी के मुख से नहीं हो सकता था।

गुलनार का शारीरिक सौंदर्य ही अवर्णनीय नहीं था, उसका बिहार स्थल, और रङ्ग-महल भी वैसा ही अपूर्व और अपरूप वैभव से से भरा हुआ था। सफेद सङ्गमरमर से बना और रत्नों से जड़ा वह भवन था, जिसमें भोग-विलास की सामग्रियाँ उमड़ी पड़ रही थीं। उनकी शोभा का वर्णन कौन करे?

इतनी धन-सम्पत्ति होने पर भी गुलनार के जीवन में सन्तृप्ति और आनन्द नहीं था। एक दिन उसने अपना खूब शृङ्गार किया, आदम-कद आईने के पास जाकर अपने अनुपम सौन्दर्य की मधुरी का पान करती रही। लेकिन हठात् उसके मन में कोई अभाव उठ खड़ा हुआ और वह अतृप्ति तथा निराशा में पड़ कर सेज पर जाकर लेट गई।

कुछ देर के बाद बादशह रङ्गमहल में तशरीफ लाए। वेगम को चिन्तित देख कर उन्होंने कारण पूछा- "गुलनार, यों उदास क्यों दीख रहे हो? जो चाहिए माँगो। तुम्हारी हर इच्छा को पूर्ण करने का भार हम पर है।"

ऐसा अभय-दान पाकर गुलनार धीरे से बोली-"तो बताइए, मेरे जैसी सुन्दरी को आपने कहीं देखा है ?" यह सुन कर बादशाह आश्चर्य में पड़ कर बोला-"सुन्दरी। तू अपनी मिसाल आप ही है।"

इस पर गुलनार बोली-"ऐसा नहीं ! मेरी बराबरी करने वाली संसार में और कोई सुन्दरी है या नहीं ? मुझे खूब जान लेना चाहिए, यही मेरी इच्छा है।"

बादशाह हँस पड़ा। इसके लिए उसने सब इन्तजाम कर दिया। लोग जहाँ-तहाँ से बादशाह के रङ्ग-महल में आने लग गए। वे सबके सब स्वर्ग लोक के यक्ष, किन्नर, गन्धर्व और अमर सौन्दर्य से भी श्रेष्ठ सौन्दर्य से प्रकाशित हो रहे थे। गुलनार बेगम ने एक-एक कर के सब की परीक्षा की, फिर सब को विदा कर दिया और शयन-मन्दिर में जाकर आईने में अपना रूप देखने लग गई।

फिर मन्द मुसकान से बोल उठी- "लाखों देवता क्यों न आ जाएँ, मेरी और मेरे सौंदर्य की बराबरी करने वाला कोई नहीं।

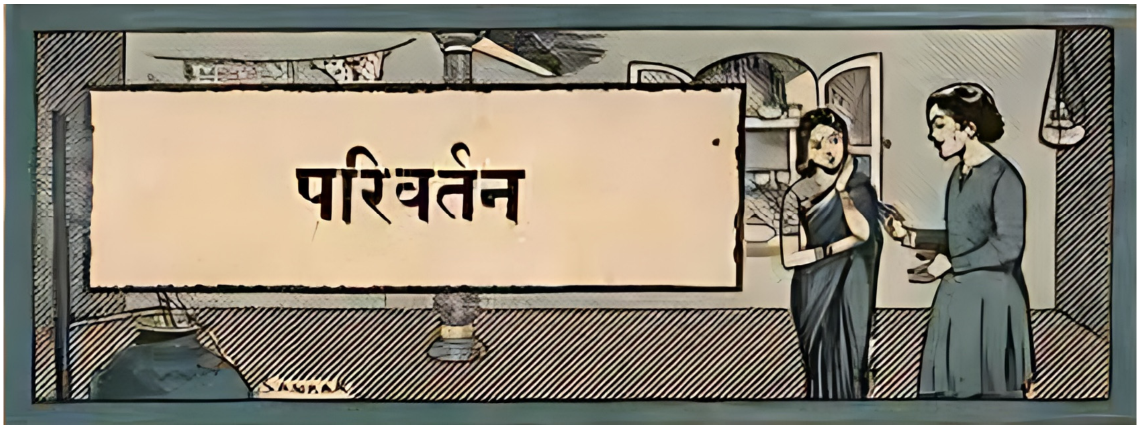
मगर वह तृप्ति बहुत देर तक नहीं रही। फिर वही पुरानी चिन्ता उसके मुख पर मँडराने लग गई।

इस बार उसने खुद बादशाह को अन्तःपुर में बुला भेजा, और उसके आने पर बोली-"मेरा हृदय न जाने क्यों अतृप्ति की आग में उबलता ही जाता है।" बादशाह बेगम की चिन्ता को हटा नहीं सका।

इतने में बसन्त ऋतु आई, कलियाँ खिलीं, फूलों पर मँडराने वाले भौरों की गुञ्जन ध्वनि शुरू हो गई। राज उद्यान में कोयल और बुल्बुल मङ्गल-गान करने लगी। ऐसे ही शुभ समय में गुलनार की एक बच्ची पैदा हुई।

उसकी सखियों ने बच्ची को लाकर बेगम के सामने रख दिया। अब फिर बेगम ने बादशाह को बुला भेजा। बादशाह के आने पर वह बोली-"अब जाकर मेरी इच्छा पूरी हुई। मेरी बराबरी करने वाली मुन्दरी मुझे आज दीख पड़ी, आज ही मेरा हृदय शान्त हुआ। मेरी खूबसूरती की बराबरी करने वाली सारे जहान में यही एक बच्ची है।" कह कर बच्ची को अपनी छाती से लगा कर चूम लिया।





कुरुकुन्डा राज्य का राजा तिम्मराज था। वह बहुत उदार और दयालु व्यक्ति था। अपने राज दरबार में रहने वाले मन्त्री, सेनापति, सरदार वगैरह से ही नहीं, दास दासियों से भी वह बहुत भलमनसाहत से पेश आता था। ऐसे धर्मात्मा महाराज तिम्मराज के दरबार में मोती नामक एक नौकर था। मोती के बाल-बच्चे नहीं थे। खुद और एक पत्नी- बस इतना ही। घर राजा के दिए हुए धन से भरा था। लेकिन वह उसे भोगता नहीं था। पेट बाँध कर पैसे बचाया करता था।

महाराज तिम्मराज के राज्य में ताम्बे के सिक्के तो थे ही नहीं, चाँदी के सिक्के भी बहुत कम थे। नौकर-चाकरों को भी वहाँ सोने के सिक्के ही दिए जाते थे। मोती को जो मुहरें मिलती थीं, उन्हें वह प्राणों के समान जमा करता जाता था। इसमें उस की स्त्री मुरली का भी पूरा सहयोग था।

जरूरत पड़ने पर दो चार मुहरें खर्च करने में भी, पति-पत्नी की नानी मर जाती थी। रोज रात को सोने के समय वे अपनी जमा की हुई मुहरों की गठरी अपने सामने रख कर, बड़े जतन से गिनते और रख देते थे। फिर हिसाब करके वे कह उठते- "अरे, आज दो मुहरें खर्च हो गई ! यह कभी कैसे पूरी होगी ?"

ऐसे करते धरते मोती को एक अच्छी बात सूझ गई। फौरन पत्नी को बुला कर उसने कहा-"अजी, सुनो तो सही! क्या मेरे कहे अनुसार करोगी? करो तो अनायास हम लोग सोने की दीवारें और महल खड़े कर सकते हैं।" यह बात सुन कर मुरली सिर से पैर तक पुलकित हो उठी। यह कैसे

कु. कमला बक्शी



हो सकता है, यह सुनने के लिए वह सामने आकर बैठ गई।

इस पर मोती बोला-"कोई बड़ी बात नहीं, मैं चार रोज के लिए गाँव छोड़ कर कहीं दूसरी जगह चला जाऊँगा। तू हमारे गाँव के धनी मानियों के पास जाकर व्याकुल हो कर कहना-'मेरे स्वामी को राजा ने कैद कर लिया है। मेरे जीवन का एक मात्र सहारा चला गया है। अब जीऊँ कैसे? मैं तो राह की भिखारिन बन गई; कहीं कोई सहारा नहीं रहा।' इस प्रकार तू लोगों से कह, फिर देख; क्या होता है ?"

अपने निश्चय के अनुसार दूसरे दिन तड़के ही मोती गाँव छोड़ कर जाने कहाँ चला गया। मुरली गाँव के धनी मानियों के पास जाकर पति के पढ़ाए हुए पाठ को दुहराने लगी। अब तक जो कभी किसी के सामने नहीं आई थी, बेसो भली-भोली औरत को अपने सामने देख कर धनी-मानी व्यापारियों का दिल पिघल गया और जिससे जो बना उसने दिल खोल कर उसकी साहायता कर दी।

बिना मेहनत के इस तरह आराम की जिन्दगी विताना मुरली को बहुत भा गया । लेकिन उसे एक बड़ी चिन्ता हो आई- जिसके यहाँ जाकर वह एक बार माँग लाई है, फिर वह उसके पास कैसे जाएगी ? काई कब तक किसी की साहायता करता जाएगा ? अब तक वह गाँव के सब धनियों के पास से साहायता ले चुकी थी।

ऐसी हालत में मोती घूम-फिर कर घर लौटा और पत्नी के साथ परिस्थितियों पर विचार किया। "मेरा उपाय सफल हुआ।" यह सोच कर उसे बड़ी खुशी हुई। इस तरह जो धन उसकी स्त्री ने जमा किया था, उससे कुछ काल तक गुजारा करके, उसने कुछ बचा भी लिया।

"अच्छा ही है। मैं फिर कुछ समय के लिए पिछली बार की तरह गाँव से बाहर चला जाता हूँ।" मोती ने मुरली से कहा। मुरली बोली-"अब मैं किसी के पास नहीं जाऊँगी। अगर फिर गई, तो भाण्डा फूटे बगैर नहीं रहेगा। पहली बार ही कुछ लोग मुझ पर चिढ़ उठे थे। कुछ लोगों ने तो यहाँ तक कहा-"अगर गुजारा नहीं होता है, तो अपने रिश्तेदारों के पास की नहीं चली जाती हो ? कब तक हम तुमको यो पालते रहेंगे ?"

"वाह! शाबाश! उस महात्मा ने तो हमें अच्छा उपाय बता दिया है। तो मैं आज ही बाहर जाता हूँ। और तुम रिश्तेदारों के पास एक-एक कर पहुँचती जाओ। रिश्तेदारों की कमी तो है नहीं। सबों के के पास जा जा कर धन जमा कर लो।" कह कर मोती उसी रोज कहीं चला गया।

आस-पास जितने रिश्तेदार थे, पता लगा- लगा कर, मुरली सबों के पास गई और अपना दुखड़ा रोई। उसको देखते ही लोग सहानुभूति से भर उठे, और उसे ढाढ़स बँधाया। बारी-बारी से एक-एक दिन लोगों ने उसे खिलाया पिलाया और जाने के समय शक्ति सामर्थ्य के अनुसार उसे कुछ



देकर विदा कर दिया। इस प्रकार बन्धु बान्धवों के द्वारा मुरली का पालन-पोषण होता रहा। कुछ दिनों के बाद उन लोगों के मन में भी उसके प्रति कुछ अश्रद्धा पैदा होने लगी। और धीरे-धीरे लोग उसको सन्देह की दृष्टि से देखने लग गए।

यह सब देख कर मुरली घर लौट आई। कुछ दिनों के बाद मोती भी वापस आ गया। मोती ने बड़े उत्साह से बातें उठाई। लेकिन मुरली अत्यन्त विरक्त भाव से उसकी बातों को काटने लगी। यह देख कर मोती ने बड़ी गम्भीरता से कहा-"अरी, तू इतने ही से घबरा उठी है ? अच्छा तो तू अब घर



से बाहर न निकल। अब धनवान होने का मार्ग में खुद ढूँढ लूँगा।"

उसी रात को जाने कहाँ से और कैसे एक बहुत बढ़िया मोती लेकर वह घर पहुँचा। दूसरे दिन फिर एक लाया, तीसरे दिन और एक। आज मोती, तो कल मूँगा परसों नीलमणि। इस प्रकार रोज-रोज एक न एक अनमोल अपूर्व, मनोहर चीज यह लाने लगा।

मुरली को यह सब जादूगरी का खेल जान पड़ा। रोज रात को घर आने के समय मोती एक न एक चीज जरूर लाता और व्यापारियों के हाथ बेचता जाता था। एक दिन जब वे दोनों एक नीलमणि लेकर बाजार में बेचने गए, तो जाने कहाँ से राजा के सिपाही आ धमके और दोनों को पकड़ कर बन्दी बना लिया। इतना ही नहीं, मोती के घर पर उन्होंने छापा भी मारा। मैती का घर बाहर से बहुत छोटा दीख पड़ता था। लेकिन अन्दर खोद कर देखा गया तो तरह-तरह की धन-सम्पत्ति निकलने लगी। राजा के घर से जो कुछ गया था, सब का सब निकल आया। वह सब लेकर राजा के सिपाही राजदरवार में पहुँचे। अब क्या था, सारे नगर में बिजली की तरह यह खबर फैल गई कि इसके लिए मोती और मुरली को फाँसी की सजा दी जाएगी। दोनों राजा के सामने खड़े कर दिए गए। वे राजा के चरणों पर गिर पड़े और "त्राहिमाम ! त्राहिमाम !" करने लगे। भरे दरबार में महाराज तिम्मराज ने यों कहना शुरू किया-"मोती, तुम दोनों ने सारी जिन्दगी अनेक कष्ट उठा कर यह धन जमा किया था। तुम ही दोनों इसे भोगने के अधिकारी हो। सब धनराशि को दो गठरियों में बँधवा कर उनके माथे पर रखवा दिया। यह फैसला सुन कर किसी की समझ में कुछ नहीं आया कि इसका रहस्य क्या है ?

सब लोग कहने लग गए-"महाराज तिम्मराज की बुद्धि समझ में आने वाली नहीं।"

दूसरे दिन मुहरें लेकर मोती बाजार में चावल खरीदने गया। लेकिन जिस किसी के पास वह गया, सब ने 'नहीं' कर दिया। जितनी दूकानों पर गया, सब ने वही बात कही। जरूरत की चीजें बाजार में न मिल सकी। अब वह क्या करे? आस-पास के गाँवों में जाकर देखा, वहाँ भी बड़ी बात।

यों मोती का जीवन महा सङ्कटमय हो गया। अब उसकी आँखें खुली और उसे तिम्मराज की बातों का अर्थ मालूम हुआ। फौरन उसने अपने सभी गड़े हुए धन निकाल डाले। बान्धवों के यहाँ से मुरली ने जो धन जमा किए थे, सब मुरली के द्वारा एक-एक कर लौटा दिया। अपने नगर में भी जो धन जमा किए थे सब आग्रह पूर्वक लौटा दिए। राज-खजाने से जो कुछ चुराया था, सब का सब लौटा दिया। अब मोती एकदम बदल गया था। उसे मालूम हो गया कि धन का उपयोग जीवन-यापन में एक साधन मात्र हो सकता है। सिर्फ धन पैदा करने के लिए हम पैदा नहीं हुए हैं। यह दिव्य मन्त्र उसके मन में अच्छी तरह गड़ गया।



"अरे ! मैंने अपना समस्त जीवन व्यर्थ कर दिया। जिसका ओर-छोर कोई न हो, ऐसे अपार लोभ में पड़ कर मैं सब कुछ भूल गया और 'दिन प्रति लाभ-लोभ अधिकाई !' की तरह मेरा लोभ कम होने के बजाय बढ़ता ही गया। मन को निमिष मात्र के लिए भी कभी तृप्ति नहीं मिली। अपनी दुराशा-भरी आशा की पूर्ति के लिए मैंने अपनी पत्नी के जीवन को भी नष्ट कर डाला और जिसने कभी बाहर पैर नहीं रखा था, उसे अच्छे-बुरे सभी स्थानों में भटका कर नाना घाट का पानी पिलाया। इतना करके मुझे मालूम हुआ

कि धन का मूल्य और प्रयोजन क्या है। अब मैं अपने लाभ के लिए किसी पर कोई भार नहीं डालूँगा। किसी को नहीं सताऊँगा। इतने भर पेट के लिए मुझे चाहिए ही कितना ? महा दयालु मेरे स्वामी ! मेरी जरूरत के मुताबिक मुझे देते ही आए हैं, उससे तृप्त न होकर में कैसी लालसाग्नि में पड़ गया। ओह ! यह ज्वाला मुझे किस प्रकार जलाए जा रही है !"

इस तरह आत्म-ग्लानि, अनुताप और घोर सन्ताप में जलता हुआ वह अपने घर लौटा और निश्चेष्ट होकर बैठ गया। धन जमा करने की धुन हटते ही मोती के मनसे धन की लालसा मिट गई। और धन की ममता मिटते ही उसका मन अद्‌भुत ज्ञानप्रकाश से भर गया। फिर वह आनन्द से पुलकित हो उठा।

इतने में रजा के दूत वहाँ आ पहुँचे । लेकिन इस बार वे पति-पत्नी को बाँधने नहीं आए थे। वे लोग इस बार अपने साथ दिव्य भोजन पदार्थ लेकर आए थे। यह देख कर मोती और मुरली के हर्ष की सीमा न रही।

उस दिन से मोती और मुरली को अपने घर में खाना पका कर खाने का बहुत कम मौका मिलने लगा। यह क्या ! रोज दोनों वक्त राजभवन से उनके लिए भोजन पहुँचने लग गया। इसके अलावा महीना खनम होते- होते मोती का वेतन उसके घर पहुँच जाता था। अब उसके लिए कमी किस बात की रह गई? अब धन जमा करने की जरूरत ही उनके लिए नहीं रह गई थी। इसलिए मोती और मुरली अपने महाराज के लिए ही रात-दिन परिश्रम करते थे और कृतज्ञ हृदय से सन्तोष और सुख पूर्वक जीवन बिताने लगे। मोती का यह परिवर्तन राजा और प्रजा के लिए अत्यन्त आह्लादकारी सिद्ध हुआ।



CHANDAMAMA (Hindi) DECEMBER 1952 Regd. No. M. 545



रङ्गीन चित्र-कथा, चित्र-2